कवि

ताराशंकर बंदोपाध्याय



कवि

कवि

ताराशंकर वन्द्योपाध्याय

न व यु ग प्र का श न
दिल्ली

१९५४

मूल्य : साढ़े तीन रुपये

नवयुग प्रकाशन, ३८१, चावड़ी बाज़ार, दिल्ली द्वारा प्रकाशित
तथा रामा कृष्णा प्रेस, कटरा नील, दिल्ली, में मुद्रित।

वास्तव में यह है एक आश्चर्य !

इसका प्रमाण भी है—दैत्य कुल में प्रह्लाद; लेकिन यह तो भगवान् की लीला है। मूक को जो वाचाल बनाते हैं, पंगु जिनकी इच्छा से पर्वत लाँघ सकता है, उसी परमानन्द भगवान की इच्छा से दैत्य कुल में प्रह्लाद का जन्म सम्भव हुआ था; मगर संसार में कुख्यात अपराध स्वरूप डोम वंश की सन्तान का अकस्मात कवि रूप में विख्यात होने को भगवान् की लीला कहा जा सकता है या नहीं, इसके लिये कोई शास्त्रीय प्रमाण नहीं है। चर्चा करने से शरीर के रोएँ खड़े हो जाते हैं। अतएव इसे लोगों ने एक आश्चर्य मान लिया है।

गांव के भले लोग सच ही कहते हैं—'यह एक आश्चर्य है, सचमुच आश्चर्य !'

अपढ़ हरिजनों का कहना है—'निताई चरण ने तो पत्थर में दूब जमा दिया।'

जिस वंश में निताई चरण का जन्म हुआ है, वह वंश हिन्दू समाज में प्राय: पतित वर्ग के अंतर्गत डोम जाति का है। शहरों में डोम का जो कर्म और धर्म है, ये वैसे नहीं है। ये तो बंगाल के विख्यात लठैत—प्राचीन काल से ही अपने बाहु बल के लिये डोम प्रसिद्ध हैं। इनकी उपाधि है—वीर वंशी। नवाबों की पलटन में भी वीर वंशी अपनी वीरता के लिए प्रसिद्ध थे। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के जमाने में नवाबों के संरक्षण से वंचित होकर ये विख्यात लठैत, डकैतों में बदल जाते हैं। पुलिस का इतिहास इस डोम वंश की कीर्ति-कलाप से भरा पड़ा है। इस गाँव के डोमों में आज भी प्रत्येक के खून में वही रक्त प्रवाहित है। इस रक्त प्रवाह को रोकने के लिए पुलिस ने कुछ उठा नहीं रखा

है। इनके लिये लोहे की हथकड़ियां, बड़े-बड़े फाटकों वाले गारद, डंडा-वेड़ी तथा फौज दारी दण्ड विधान आदि बने। इतने पर भी फलगु की धार की तरह अधीर गति में आज भी वह रक्त धार बह रही है। निताई के मामा, गौर वीर वंशी यानि गौर डोम इस इलाके का प्रसिद्ध राहजन है। अभी एक वर्ष पहले ही वह पांच वर्ष काला पानी की सजा अर्थात् अंडमन में रह कर लौटा है।

निताई के नाना, गौर के पिता, शम्भू वीर वंशी अंडमन में ही शरीर त्याग कर चुके हैं।

निताई का बाप था—सेंध मारने वाला चोर। दादा था राहजन। अपने दामाद की ही उसने रात के अंधियाले में लूटकर हत्या कर दी थी। वह जमीन यहाँ से एक कोस दूर पर है। इनके पूर्व पुरुषों का इतिहास पुलिस की रिपोर्ट में है—भयंकर और रक्त रंजित इतिहास।

ऐसे ही वंश का लड़का है निताई चरण। खूनी का पोता, डकैत का भांजा, लुटेरे का नाती। उसके चेहरे पर वंश परम्परा की छाप स्पष्ट है। हट्टा-कट्टा, रात के अंधेरे की तरह काला रंग। मगर उसकी बड़ी-बड़ी आँखों में बहुत ही विनम्रता है और उन आँखों में एक सकरुण विनय की आभा है। वही निताई अचानक कवि के रूप में विख्यात हुआ। लोगों के विस्मय से अपनी ओर देखने पर वह गौरव की लज्जा से धरती में आँखें गड़ा देता।

घटना यों घटी

इस गाँव का प्राचीन नाम है अट्टहास-एकान्त महापीठ का अन्य तम महा पीठ है यह। इस महापीठ की अधिष्टात्री देवी हैं महादेवी चामुण्डा। माघी पूर्णिमा के दिन चामुण्डा की पूजा एक विशिष्ट पर्व के रूप में होती है। इस पूजा के उपलक्ष में यहाँ मेला लगता है। हर बार मेले में कवियों का जमघट होता, नोटन दास और महादेव पाल—ये दोनों इस इलाके के विख्यात भाट हैं, इन्हीं लोगों का रोब दबदबा

यहाँ है। दोपहर से ही लोगों की भीड़ इकट्ठी होने लगती है और शाम तक अपार भीड़ वहाँ जम जाती है--प्राय: हजार, डेढ़ हजार लोग इकट्ठे हो जाते हैं।

शाम को पूजा पाठ सम्पन्न कर कवि दरबार का आयोजन हुआ, चारों ओर चार पेट्रोमेक्स जला दिये गये। भाटों में महादेव का दल मजलिस में आ गया, लेकिन नोटन दास का कहीं पता नहीं। जो आदमी उसे बुलाने गया था उसने कहा 'घर पर कोई नहीं मिला, न कोई सुनने वाला और न कहने वाला—घर सायं-सायं कर रहा है—काट खाने को दौड़ता है। केवल दरी बिछी है जो हम लोगों ने दी थी।'

मेले के आयोजक स्तम्भित और किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गये।

नोटन दास का कोई अपराध नहीं। पिछले वर्ष का ही उसका रुपया बाकी पड़ा था, इसलिए चामुन्डा के महंत उसके सर पर हाथ रख कर आशीर्वाद देते हुए बोले थे—'अगली बार सब कुछ ठीक हो जायेगा। दरबार में कदम रखने के पहले ही तुम्हें दोनों वर्ष के रुपये मिल जायेंगे।'

नोटन और महादेव बहुत दिनों से इस मेले में भाग ले रहे हैं। पहले, कभी उन्हें इस मेले से बहुत कुछ मिला था, इसी कृतज्ञता या आँखों की शर्म से वे पिछले वर्ष कुछ कह नहीं सके थे। लेकिन इस वर्ष जब नोटन महंत के पास आया और प्रणाम कर हाथ पसार कर खड़ा हो गया, तब रुपये के बदले उन्होंने उसकी हथेली पर एक हुड़हुर का फूल रख दिया और केवल आशीर्वाद से उसको संतुष्ट करना चाहा, 'जिओ, मंगल हो।' इतना कहकर वे अपने ध्यान में मग्न हो गये। बहुत से लोग बैठे थे, जिनमें अधिकांश गाँव के बूढ़े-बड़े और सम्मानित व्यक्ति थे, उन्हीं से वे चर्चा में लीन हो गये। नोटन चर्चा के समाप्त होने की प्रतिज्ञा में बैठा रहा। चर्चा का विषय था मेला और माता चामुण्डा के स्थान में होने वाले आय व्यय की व्यवस्था। महंत जी ने आय और व्यय के सविस्तार हिसाब का विवरण पेश किया तथा अन्तिम फैसला

दे दिया कि माता चामुण्डा के बिना हैंड नोट काटे कोई चारा नहीं। अन्त में मृदु मुस्कान के साथ बोले—ऐसा देने वाली अन्य नहीं मिल सकती भक्तों। कुबेर खजान्ची है। धर्म के कागज पर कामना की स्याही से हैण्डनोट लिखकर अर्थ देने पर परलोक में मोक्ष, सूद सहित परमार्थ का पाई-पाई मिल जायेगा। वे जोर से हंस उठे। साथ-साथ सभी हँस पड़े। नोटनदास भी हँसा। इसके बाद वह वहां से नौ-दो ग्यारह हो गया।

नोटन जब अपने घर पहुँचा तो देखा वहां बयाना लेकर एक आदमी उसकी प्रतीक्षा में बैठा है। यहां से दस कोस की दूर पर बसे एक गांव में भी एक मेला लगेगा। वहां इस बार खूब उत्सव होगा, वे नोटनदास को कवि दरबार के लिये चाहते हैं। यहाँ तक कि यदि नोटन चाहे कि यहाँ के दरबार में उसका रहना जरूरी है, तो भी वह यहां का काम खत्म कर कर वहाँ जा सकता है। यानी उसे वहां जाना ही होगा। अच्छा तो यह हो कि यहाँ वह स्थगित कर दे।

नोटन ने कहा—'हूँ', इसके बाद उसने अपने शागिद से कहा—'बोतल लारे।' बिना बोतल के नोटन की साँस नहीं चलती। बोतल मुँह में लगाकर वह घूँट-दो घूँट पी लेने के बाद शरीर चटखार कर गर्व से बैठ गया।

आगन्तुक उसकी ओर देखता रहा, उसने कहा—'तब उस्ताद मुझ से कुछ कहा जाय। इसी गाड़ी से ही लौट जाना है और गाड़ी का समय भी हो गया है।'

नोटन ने हँस कर कहा—'मेरा दरबार वहीं लगेगा।'

आगन्तुक ने विनीत स्वर में पूछा—'और यहाँ ?'

नोटन ने कहा—'तुम अपनी सोचो, गाँव की चिन्ता में दुबले क्यों होते हो।'

उस आदमी ने कहा—'हाँ, हाँ यह तो ठीक है उस्ताद ! आप कब पधारेंगे ?'

'आज और अभी तेरे साथ इसी गाड़ी से ।'

उस आदमी की खुशी का ठिकाना न रहा । उसका दिल बल्लियों उछल उठा—'जिओ, जिओ उस्ताद ! हजार बरस जिओ !'

'मगर हम एक रात का पन्द्रह रुपया लेगें ।'

'मंजूर ।' उसकी खुशी की सीमा नहीं थी ।

'और पहले चुका देना होगा ।'

उसी क्षण आगन्तुक ने एक दस रुपये का नोट सामने रख दिया और कहा—'यह रहा, बाकी वहाँ आपकी चरण रज पड़ते ही पाई-पाई चुका दिया जायेगा ।'

नोट अंटी में लगाकर नोटन उठ खड़ा हुआ । ढोलकिये और संगियों से उसने कहा—'उठो ! फिर उस आदमी से कहा—'रुपये लेकर ही हम दरबार में पैर रखेंगे, कहे देते हैं । इसके बाद शाम को झुटपुटे अँधेरे में वह मुँह छिपा कर स्टेशन आ पहुँचा और गाड़ी में मुँह ढंक कर बैठ गया ।

× × ×

नोटन भाग गया, यह सुनकर उसका प्रतिद्वन्दी महादेव मन ही मन बड़ा अफसोस कर रहा था । आज तक वह नोटन के दरबार में कभी हारा नहीं, लेकिन आज हृदय से हार मान गया और साथ-ही साथ उसने नोटन को बेइमान कहकर गालियाँ भी दीं ।

दरबार में श्रोताओं का धैर्य क्रमशः छूटता जा रहा था, असली बात उनसे छिपा ली गयी थी । अधीर श्रोताओं के जमघट ने अपने कलरव से वहाँ बाजार सा लगा दिया । एक ओर बैठे मेला के आयोजक तथा जमींदार नोटन को खरी-खोटी सुना रहे थे । महंत चिन्तित थे । नोटन भाग गया, क्या होगा ? यह बात जरा श्रोताओं के बीच फैली तो फिर क्या हाल होगा । यह जमघट बाँध तोड़कर बहने वाली धार की तरह चारों ओर तितर-बितर हो जायेगा । मेले में सिर्फ रह जायगा धूल धूसरित-पथ पर असंख्य दर्शकों के चरण चिन्ह । मगर गांव के जमींदार

खर में लगी आग की तरह जल उठे थे—इतने नाराज थे कि फौरन लठैतों को भेज उसे पकड़वा कर गले में गमछा लपेट कर जूतों से उसकी चमड़ी उधड़वाने को तत्पर थे। इतना ही नहीं, उस पर मानहानी का मुकदमा दायर कर उसे गाँव से हमेशा-हमेशा के लिये निकाल देने को करबद्ध बैठे थे। जमींदार के दायें गंजेड़ी भूतनाथ बैठा था—नाम से भूतनाथ होने पर भी दक्ष यज्ञ नाशी विरुपाक्ष की तरह ही दुर्धष और भयंकर—भूतनाथ ने जमीन चूमती अपनी धोती का फेंटा बाँध लिया और बोला—'दो लठैत हमारे साथ दो, मैं अभी-अभी जाऊँगा, दस कोस रास्ता, अरे यह तो एक दम की बात है।' इतना कहकर वह जैसे दम मारने का अभ्यास करने लगा।

इसी समय, पता नहीं किसने यह बात सुन ली और भीड़ में ताल ठोक कर कहा—'चल चल रे कल्लू !'

—'क्यों ? यहाँ से उठने पर बाद को पैर रखने की जगह भी नहीं मिलेगी बे !'

'अबे तू जगह लेकर चाटेगा ? चल-चल, घर चलें खायें-पियें आराम करें। यहां चिराग गुल होने वाला है। गाना वाना नहीं होगा।'

'यह झूठ है।'

'झूठ ! माँ की कसम कुछ होने जाने को नहीं है।'

कल्लू मजाकिया आदमी है—वह साथ-ही-साथ कह उठा—'राम नाम सत्य है'—भीड़ ने भी कौतुहल वश उसका साथ दिया—'राम-नाम-सत्य है–।' यानी मेले की अर्थी की घोषणा कर तिनके में लगी आग घर में फैल गयी। जमींदार जनता पर ही क्रोधित हो उठे।

'कौन ? कौन ? कौन है रे बदतमीज !'

'पकड़ो तो, साले को पकड़ो हरामी, बेवकूफ।'

भूतनाथ बाघ की तरह भीड़ पर झपटा और कल्लू के बदले उसने अपने सामने पड़ने वाले अन्य एक के सर के बालों को मुट्ठी में ले लिया और झकझोर कर कहा—'चुप रह साले।'

कुछ लोगों ने उसे शान्त किया—'हां, हाँ, हाँ ! भूतनाथ यह क्या करते हो, छोड़ो-छोड़ो।'

भूतनाथ ने उसे छोड़ दिया लेकिन अन्तिम चेतावनी उसे दे दी—'खबर--दार रे।'

एक विचारवान बूढ़े व्यक्ति ने कहा—'मेले-ठेले में ऐसा ही होता है। बोल और बोली से ही तो मेले की शोभा है। भोला भाट ठुनुक गांव में भरे दरबार में जमींदार के मुँह पर ही बोला था—

'नाम नैनसुख आँख के काने, यहाँ के राजा बड़े सयाने
कहते हैं यह है वृन्दावन, कृष्ण कानन
नहीं यहाँ पर श्याम कुण्ड और नहीं यहाँ है राधाकुंज
चारो तरफ है केले का बन, अरे यहीं कर लो दर्शन,
'यह सुन जमींदार नाराज नहीं हुए, बल्कि खुश हुए थे।'

भूतनाथ समझदारी से ताल्लुक नहीं रखता। उसने उस बूढ़े को ऐसी दुलत्ती झाड़ी की उसकी बोलती बन्द हो गयी—'चुप, चुप भी रहो, बड़े आये, न तीन में न तेरह में। कहते हैं नाम मेरा भी लिखो।'

अरे नाम लिखा चुके हो तभी न नाम लिखने के लायक हो। गुस्से से काम कैसे चलेगा? दो-तीन कोस से नून-सतू बाँधकर लोग आये हैं गीत सुनने। लेकिन वे सुन रहे हैं कि कवि भाग गया तो मजाक से जरा मन को संतोष नहीं दें तो और क्या करें? इतना गुस्सा ठीक नहीं।'

महंत जी चिलम चढ़ाकर अगड़ धत्तत बने बैठे हैं अवश्य। लेकिन एक जमाने में वे थे पक्के पटवारी यानी जमींदार के नायब। वे अब तक मौन साधे चिन्ता में लीन थे, मगर इतनी देर बाद बोले—'अच्छा, अच्छा गाना होगा और होगा। इतना शोर गुल क्यों? 'जय माता चामुण्डे!' इतना कह कर वे सरल हँसी हँस पड़े।

सभी ने उत्सुक होकर महंत जी की ओर आंखें गड़ा दीं। महंत पुनः बोले—'बुलाओ महादेव को और उसके शागिद को। यह ही होगा।

गुरु और चेले में ही युद्ध होगा। राम रावण के युद्ध से द्रोण अर्जुन का युद्ध कुछ कम नहीं था। रामायण के सात काण्ड हैं और महाभारत के हैं अठारह पर्व।'

शोर-गुल मचा—'महादेव! महादेव! अरे ओ कविवर! ओ उस्ताद जी, कहाँ हो, आओ मैदान में।'

२

महादेव ने इस अनहोनी को स्वीकार किया।

महंत जी ने आशीर्वाद देकर उसे कल्पतरु के नीचे बैठाया, अन्त में स्वीकार नहीं करने के सिवा-और चारा क्या था। मगर और एक दल की आवश्यकता थी। ठीक इसी समय निताई का वहां आगमन हुआ। उसने करबद्ध होकर, परम विनय के साथ नम्रता पूर्वक निवेदन किया —'भगवन्, इस अधीन का एक निवेदन है—आपके श्री चरणों में।'

किसी और के कुछ कहने के पहले ही महादेव कह उठा—'अरे वाह, वाह, यह है न अपना निताई, अब चिन्ता किस बात की है? निताई बड़े मजे में निभा लेगा।'

निताई के गुण का परिचय इन लोगों को मिल चुका था। वह कवि दरबार जहाँ भी होता, वहाँ उन लोगों के साथ घुल-मिलकर बैठ जाता था, कभी झाँझ बजाता और कभी ढोलक पर ताल देते हुए दो-चार कड़ी गुनगुना भी देता।

बैठे हुए बाबुओं में से एक सज्जन कलकत्ते में नौकरी करते थे, मैले धोती-कुर्ते में वे चिकचाक वस्त्रों की तरह ही शोभायमान थे—भारी-भरकम चाल। बहुत ऊँचे दर्जे के पृष्ठ पोषक की तरह करुणा मिश्रित

विस्मय प्रकट करते हुए वे बोले—'आप, आप क्या कहते हैं, अपने निताई चरण में इतना गुण है। वाह, वाह रे निताई! जुट जाओ बहादुर, देर न करो, दरबार शुरू हो। आदत के अनुसार उन्होंने कलाई में बंधी घड़ी देखने को चेष्टा की त्यों ही झटपट एक आदमी ने सलाई जला कर पूछा—'देखिये तो कितना बजा है ?'

वे सज्जन झुंझला कर बोले—'ओह, इसकी जरूरत नहीं है। घड़ी में रेडियम है, अन्धकार में भी दीख पड़ती है।'

भूतनाथ रेडियम का कर्ज नहीं खाये बैठा है, वह विद्रूप कर निताई से बोला—'बढ़ जा आगे, बिल्ली के भाग से छींका टूटा। अन्धों में काना राजा ही सही!'

निताई के दिल पर चोट लगी पर उसने कुछ कहा नहीं—उधर अब तक दरबार में ढोल पर ताल जमाया जा रहा था—ताक धिनाधिन तड़ातड़, धिन्न धिन्ना धिन्न!

निताई जुट गया।

मंजे और सधे उस्ताद से निताई का मोर्चा होते हुए भी यह आपसी मामला था—बिलकुल नया ढंग। तीव्रता और उष्णता का जरा भी नाम नहीं था। श्रोताओं में फुस-फुसाहट दो प्रकार की हो रही थी। जिनमें अक्ल थी, वे कह रहे थे धत् मजा नहीं आता, चलो घर चलें। यह कोई दरवार है। और दो-चार व्यक्ति उठकर चल भी पड़े।

दूसरे दल ने कहा—'महादेव का शागिद भी बड़ा मजेदार कवि है, माँ कसम यार, खूब जबाव दे रहा है—बड़े ढंग से।'

निताई की प्रशंसा हो रही थी—निताई का गला बहुत अच्छा है। उस पर वह नमक मिर्च भी खूब लगा रहा है। वह जी-जान से चेष्टा कर रहा है—दो-चार कड़ी गाने की।

बाबुओं ने उसे उत्साहित किया—'वाह, कमाल है, कमाल।'

निताई के परिवार के लोग तथा दोस्तों ने कहा—'अच्छा, खूब!'

एक कोने में औरतों का जमघट था—उनके आश्चर्य की सीमा न

थी, निताई के प्रिय दोस्त स्टेशन के प्वाइटमैन राजालाल की बहू हँसते-हँसते लोट-पोट हो रही है—हाय दईया ! निताई के पेट में इतना गुन ! दईया रे दईया !

उसके पास ही बैठी है राजा की बहू की बहन, सोलह सतरह वर्ष की पड़ोस के गांव की बहू—वह तो आश्चर्य से अवाक हो गयी है। वह अपनी बहन पर रह रह कर विरक्त हो उठती है और कहती है—'अरी वाह री हँसी ! जरा सुनो भी तो मन लगाकर। सुनती क्यों नहीं !'

राजा दोस्तों का सिर मौर बना दूर पर बैठा झूम रहा था, वह हंसकर बोला—'देख रही हो ठाकुरजी उस्ताद, कैसा गाता है, देखो तो भला।'

राजा अपनी इस साली को प्यार से ठाकुरजी कहता है ! निताई भी उसे कहता है ठाकुर जी। अपनी ससुराल अर्थात पड़ोस के गाँव से वह रोज दूध बेचने आती है। निताई भी एक पाव रोज उससे दूध लेता है। इसी कारण वह छोकरी इतनी विस्मित हो उठी है। जिस व्यक्ति को जो जानता है, उसमें अकस्मात एक अपरिचित व्यक्ति को विकसित होते देख कर मनुष्य इसी प्रकार विस्मित हो उठता है।

लेकिन निताई को इस समय इतना अवसर कहां, जो वह ठाकुरजी की ओर देखे। वह तो अति उत्साह में भरा है। उमंग की तरंग में बह रहा है। वेगवती लहर की तरह स्वयं रचित गीत वह गाने लगा। अलाप भर कर महादेव के शागिद की रची कविता को बदल कर उसने उसी स्वर और छन्द में नयी उक्ति भर दी।

महादेव के शागिद ने आपत्ति की—'ऐ, यह क्या ? तुम क्या गा रहे हो ? अबे ओ निताई ?'

निताई ने उसकी बात अनसुनी कर कर बायाँ हाथ कान पर ले जाकर तथा दाहिना मुँह के सामने लें गया ताकि थूक निकल पड़े। सामने की ओर जरा झुक कर ताल पर झूमते हुए उसने कहा—

हुजूर, भद्र पंचजन हैं जब सभासन

करेंगे अवश्य सुविवेचन
इतना है विश्वास हो—,

वाह-वाह का समा बँध गया—'बहुत खूब, वाह वाह !'

साधारण श्रोताओं ने कहा—'अच्छा, भाई अच्छा ।'

निताई ने तड़पकर ढोलक पर ताल दी। साथ ही हाथ की ताली से बाजे का बोल बोलना शुरू किया—धिकड़ ताता, धिन्नाता, धिकड़ ताता, धिन्नाता—गुड़ गुड़ ताता थैया—धिकड़;—हाँ, कहकर उसने अपनी रची कविता का पारायण किया।

'क—से काली कपालिनी, ख—से खप्पर धारनी
ग—से गौमाता सुरभि—गणेश जननी
कंठ विराजो माँ वीणावादनी ।'

एक ओर कुछ गँवार छोकरे बैठे थे—वे 'ही ही' कर हँसने लगे। एक ने कहा—'ग से गोरख, क से बकरा, ब से भेढ़ा, वाह भाई बहुत अच्छे !' हँसी का फौव्वारा छूट पड़ा ।

निताई साथ-ही-साथ खड़ा हो गया, इसके बाद हँसी कुछ शांत होते ही बोला—'सुनो शागिदो !'

महादेव के शागिद सभी नाराज हुए बैठे थे, और कोई शागिद वहाँ नहीं था । किसी ने उत्तर नहीं दिया। अब कि निताई उत्तर की आशा किये बिना ही बोला—'गोमाता के नाम से सभी हँसते हैं। कहते हैं ग से गोस, ब से बकरी, भ से भेड़ा ।'

ढोलकिये ने इस बार कहा—'हाँ उस्ताद ।'

'अच्छा'—कहकर उसने उक्ति वैचित्र्य उत्पन्न किया !

'गौमाता सुन कर हँसते हैं सभी
सुनो—कहे हाथ जोड़ ये दीन कवि'

उसने दोनों हाथ जोड़ लिये और भीड़ के चारों ओर एक बार फेरा लगा दिया । उसका दोस्त राजा उत्साह में बोल उठा—'कहो कहो उस्ताद ।'

मगर निताई की आँखें उस समय स्पष्ट कुछ देख नहीं पा रही थीं, राजा को वह देख नहीं सका, वह बोला—

'तो कहे दीन हाथ जोड़ सुनो सभी : गौ या गाय तुच्छ नहीं कभी,
वह देती है गौ रस, है वह भगवती : सुरभि के शाप से मरे अनेक राजन
जानते हैं यह आप सभी ।'

एक स्वर गूँजा—'ठीक, ठीक ।'

ढोलकिये ने ढोलक पर ताल दिया—'डू डूम डुम ।'

निताई ने कहा;

'शास्त्र का मर्म है यह सभी
गोधन, तुल्य धन भू-भारत में नहीं
तो गोलोक पति हैं श्री विष्णु वनमाली
व्रज में की उन्होंने गो की रखवाली,

निताई के इस जवाब से सभी हतप्रभ हो गये। छन्द के बन्द में बाँधकर इतनी जल्दी और उपयुक्त जवाब देना साधारण बात नहीं। उसका दोस्त राजा भी अवाक हो उठा। राजा की बहू की हँसी रुक गई है; ठाकुर जी का घूँघट खिसक गया है साड़ी का आँचल भी कँधे से खिसक कर गोद में जा पड़ा है।

निताई ने आगे कहा—

'इसके अलावे और हैं माने
गो माने पृथ्वी यह सब सर्वजन जाने'

अब तो बाबुओं ने उच्छ्वसित कण्ठ से प्रशंसा की। दरबार के लोग मौज में, 'हटी बोलो' कह उठे।

निताई विजय के गर्व में भरकर ढोलकिये से बोला 'ढोलक पर ताल लगाओ।'

इसी बीच सभी सम्भल कर शरीर मरोड़ कर बैठ गये। राजा ने एक बार मुड़कर पत्नी और साली की ओर देखकर हँस लिया—अर्थात् उसने कहा—देखा, और पत्नी मुग्ध होकर जैसे बोली—हाँ,

हैं तुम्हारे दोस्त कमाल।

ठाकुर जी का इतने पर भी विस्मय घटा नहीं। वह खुशी में खोयी-खोयी-सी निताई को एक टक निहार रही थी। राजा उसकी अस्त-व्यस्त साड़ी के आँचल और विस्मय-विमुग्ध भंगिमा को देखकर झुँझला उठा, रूखे स्वर में बोला—'अरी, ओ ठाकुरजी! आंचल तो सम्भाल।'

इतने पर भी ठाकुरजी को होश नहीं हुआ।

तब राजा की पत्नी ने ठाकुरजी को अपने शरीर से धकेल कर कहा—'राम राम, छोकरी को जरा भी चेत नहीं।'

ठाकुरजी इस बार जीभ दाँतों से काट कर आँचल सम्भालती हुई बोली—'ओहो, इतना अच्छा गाते हैं उस्ताद!'

उधर बाबुओं की मंडली में आश्चर्य अपनी सीमा पार कर गया था। कलकत्ता प्रवासी नौकर बाबू तक ने यह स्वीकार किया—'अवश्य, यह एक आश्चर्य है! Son of a Dom-अच्छा-He is poet.

भयंकर भूतनाथ, क्रोधित होने पर रूद्र रूप धारण कर लेता है और जब खुश होता है तो खुशामदी टट्टू हो जाता है। मानसिक अवस्था के इन दोराहों पर आसानी से चिलम चढ़ाने के बाद आता-जाता रहता है। वह बिल्कुल प्रसन्न हो गया था—निताई से। उसने कहा—'यह तो गुदड़ी का लाल है रे भाई! रत्न है, हीरा जवाहर!'

महंत ने हँस कर कहा—'निताई को बड़ा बनाने के लिये माता चामुंडा ने नोटन की मति बिगाड़ दी और वह भाग गया।'

इसके बाद महादेव की बारी आरम्भ हुई। महादेव पक्का पुराना अखाड़िया है। सब कुछ देख सुन कर क्रोध से उसकी भौंहें तन गयीं और वह व्यंग बाण से निताई के हृदय पर चोट करने लगा, गाली-गलौज पर उतर आया। उसके रस पूर्ण गाली गलौज से दरबार का रंग ही बदल गया। निताई भी दरबार में बैठ कर मन्द-मन्द मुस्का रहा था। लेकिन राजा का मन खिन्न हो उठा था। वह मिलीटरी मिजाज का आदमी ठहरा, गाली-गलौज उसे असह्य हो उठा। वह

कुछ क्षण के लिये वहाँ से उठ कर मेले में घूमने चला गया। राजा की पत्नी मगर खूब हँस रही थी। ठाकुरजी किन्तु महादेव के इस व्यवहार से दुखित हुई थीं। वह झुँझला कर बोली—'हँसती क्या हो दीदी, इतनी हँसी अच्छी नहीं ! इस तरह कोई किसी को गाली देता है भला।'

महादेव गा रहा था—

'अरे ओ भाई,
डोम को आई सुबुद्धि फेंक कटारी,
अपनी टाँग में उसने मारी।
उसका बाप बड़ा था चोर,
और दादा जुआ चोर।
नाना पक्के डकैत, प. गये दाँत निपोर।
उसी वंश का निकला लड़का
होकर कवि कठोर,
जरा कुछ सोचो समझो।'

किसी ने आग में घी डाला—'राम राम !
अपना पेशा छोड़ के भाई,
जो जाय अन्य और
वही तो है धोबी का गदहा।'

अचानक महादेव ने अपने पैर में एक थप्पड़ मारा और बोलउठा—'ओह, बड़ी मुसीबत है'—इसके बाद उसने नयी उक्ति की—

'पैर में काटा मच्छर मसल, दिया धर कर
दशा यही होती है उसकी जो चलता,
मर्यादा कुचल कर'

महादेव के शागिद, जिसे हराकर निताई कवि बन बैठा है—उसने मौका पाकर नमक मिर्च लगाया—

'यही दुर्दशा होनी चाहिये,

जो हैं ऐसे खच्चर।'

इसके बाद रात जितनी बढ़ती गयी महादेव का तांडव भी उसी प्रकार बढ़ता गया। भोंडी भद्दी गालियों से उसने निताई को परास्त कर दिया। महादेव की तरह ऐसी क्षमता निताई की नहीं थी। लेकिन उसकी बहादुरी इसी में थी कि वह चोट खाकर भी धराशायी नहीं हुआ। सीना तानकर हँसते हुए सब कुछ सुनता रहा। वह गाली गलौज के उत्तर में केवल बोला—

'उस्ताद, तुम हो बाप समान,
करता हूँ तुम्हारा सम्मान,
लेकिन तुम हो गये हो पागल
खोते हो नाहक मान।'

परन्तु श्रोताओं की अवस्था इस विनीत भाव-भगिमा से रस भोग, करने लायक रहीं रह गयी थी क्योंकि महादेव ने गाली-गलौज के मंत्र से दरबार को मतवाला बना दिया था और महादेव की तुलना में सचमुच निताई नगण्य था। यानी उसकी हार हुई। इससे निताई को किसी भी तरह की आत्मग्लानि नहीं हुई बल्कि वह अपने को एक विशिष्ट व्यक्ति मान बैठा।

दरबार के अन्त में वह बाबुओं को प्रणाम कर करबद्ध होकर बोला—

'बाबू भइये, मैं मूरख अति दीन—'

वह अपना वाक्य भी पूरा नहीं कर पाया था कि बाबू भइयों ने एक स्वर में ही कहा—'नहीं, नहीं, तुमने अच्छा गाया। बहुत अच्छा।'

उत्साह के साथ उसकी पीठ पर कई धमाके धमककर भूतनाथ ने कहा—'जीते रहो, जीते रहो पट्ठे !'

किरानी बाबू ने कहा—'अरे तुम तुम तो अच्छा खासे कवि हो।'

निताई लज्जा से सर नवाकर जमीन देखने लगा। इसके बाद उसने महादेव से कहा—'क्षमा करना उस्ताद। मैं नीच हूँ, और

ठीक मैं आपके लिये मच्छर के समान ही हूँ।'

महादेव उसके इस विनय से लज्जित नहीं हुआ बल्कि वह निताई के विनय से खुश होकर बोला—'मेरे दल में आजाओ, शागिर्दी करो। इसके बाद तुम अपने शागिर्द बनाना, समझे।'

निताई मन ही मन कुछ रूढ़ और मजाकिया जवाब ढूँढ़ रहा था। महादेव की जाति और बाप-दादों की उकटने वाली उक्तियाँ उसके हृदय में काँटे की तरह चुभ रही थीं। मगर उत्तर देने के पहले ही उसे पीछे से दस-बीस आदमियों ने पुकारा—'अरे, निताई चरण, निताई चरण।'

यह सुन कर वह पुलकित हो उठा और मुड़ गया, आज ही वह 'नीते', 'नेता', 'निताई' से निताई चरण हो उठा है। जिन लोगों ने उसे पुकारा था, वे दूर खड़े बाबुओं की ओर संकेत कर बोले—'तुम्हें बाबू बुला रहे हैं।'

मंहत जी चंडी माता का प्रसाद और हुड़हूर की बनी माला उसके गले में डाल कर बोले—'वाह, वाह बहुत खूब। माता तुम्हारी उन्नति करे। अब से माता के मेले में एक रात दरबार तुम्हारे हाथ रहा करेगा।'

किरानी बाबू उसकी पीठ थप थपा कर बोले—'you are a poet'! हाँ! यह एक आश्चर्य है!'

प्रशंसा से निताई तत्काल पथ भ्रष्ट हो गया—वह क्या करे, क्या कहे कुछ स्थिर नहीं कर सका—बाबू ने कहा—लेकिन कभी भी अपने परिवार की तरह चोरी, डकैती न करना। बेटे तुम एक कवि हो, कवि!'

अब निताई हाथ जोड़ कर बोला—'जी भगवन! मैंने कभी भी चोरी नहीं की। झूठ भी मैं कभी नहीं बोलता, सरकार कोई नशा तक मैं नहीं करता। इसीलिए जात, मा-बाप, भाई किसी से मेरी नहीं पटती। मैंने अपना घर तो घर, मोहल्ले तक को छोड़ दिया है। मैं

रहता हूँ स्टेशन के राजन प्वाईंटमैन के साथ। कुली का काम कर अपना गुजर करता हूं।'

इस गांव का सभी कुछ भूतनाथ के नख दर्पण में है। वह, निताई का समर्थन करते हुए बोला—'सो तो ठीक है बाबू ! निताई सच्चा और साधू आदमी है।'

निताई ने पुनः कहा—'इस माता चण्डी के सामने खड़े होकर कहता हूँ, झूठ कहता होऊँ तो मुझ पर गाज गिर पड़े।'

३

निताई ने झूठी कसम नहीं खाई। उसने जीवन में कभी भी चोरी नहीं की, उसके परिवार के लोग, गहन रात को पैर चाप कर निर्भय विचरण करने में जो आनन्द और उल्लास अनुभव करते हैं, उस आनन्द की अनुभूति से वास्तव में निताई अज्ञान है। ग्रीक वीर अलेग्ज़ैन्डर के सामने ग्रेसियनों की तरह न्याय का तर्क वीर वंशी नहीं जानते, यह ठीक है, मगर नीति और धर्म की बातें सुनकर वे हँसते हैं। निताई की इस अज्ञानता के लिये वे घृणा करते हैं।

ऐसा किस प्रकार हुआ ? इतिहास भी इस प्रश्न से अज्ञात है। महत्व हीन बात मान कर, लोगों ने, किसी ने इस पर गौर नहीं किया इसी लिए वह अपनी जाति-परिवारों से खो गया है। फिर भी एक घटना लोगों की आँखों की पकड़ में यों ही आ गयी थी। यहां के जमींदार की माता की स्मृति में प्रतिष्ठित नैश्य-विद्यालय में निताई पढ़ता लिखता था। डोमों के बहुत से लड़के वहाँ पढ़ते थे। छात्रों की अधि-

कता के लिये जमींदार के एक धोती दान देने की घोषणा के परिणाम स्वरूप वीर बंशी लड़कों का गिरोह विद्यालय में आ इकट्ठा हुआ था। इन्हीं में निताई भी था। वर्ष के अन्त में धोती लेकर, दूसरी पोथी पढ़ने के पहले डोमों के लड़के विद्यालय से भाग खड़े हुए थे, केवल रह गया था निताई। वह इम्तिहान में अव्वल आया था, इस लिये उसे धोती के साथ-साथ एक अंगोछा भी मिला था। लड़के के अगोंछा धोती कुर्ता पाने पर निताई की माँ ने आपत्ति नहीं की बल्कि गौरव ही अनुभव किया था। और निताई को भी शायद वंश विरोधी अपने इस कार्य से एक अभिनव स्वाद मिला था। इसके बाद दो-एक वर्ष तक वह और भी पढ़ता रहा। इन दो-वर्षों में भी धोती अगोंछा और कुर्ते के अलावा उसे मिली थीं इनाम में कई किताबें—शिशु बोध, बाल-रामायण, महाभारत-कथा, जीव-जन्तुओं की कहानियां। ये सभी किताबें निताई को कण्ठस्थ हैं। निताई और आगे भी पढ़ता, किंतु एक मात्र निताई के सिवा पाठशाला में और छात्र न होने के कारण पाठशाला बन्द हो गयी, और मजबूर होकर उसे पढ़ाई छोड़ देनी पड़ी। उतने दिनों में वह भाट कवियों का भक्त हो गया। बंगाल के प्रशिक्षित वर्ग भाट-कवियों का प्रेमी है। मगर यह प्रेम भाटों की अश्लीलताओं के प्रति आसक्ति है। निताई की आसक्ति दूसरे प्रकार की है। प्रणय की कहानी कविता उसे अच्छी लगती हैं।

ममेरे मौसेरे भाइयों ने व्यंग से उसे एक दिन कहा था—'वाह, वाह रे पंडित!' अब वे लोग उसे अपने दल में सम्मिलित कर उसे दीक्षा देने की ठान बैठे।

मामा गौर चरण अभी-अभी पांच वर्ष की सजा काटकर घर लौटा है। वह बहन को पुकार कर गम्भीर स्वर में बोला—'निताई को अब काम-काज करने को कहो, लिखाई-पढ़ाई तो बहुत हो गयी।'

गौर चरण के इस कथन का अर्थ है—यह उसकी आज्ञा है। निताई की मा ने अपने लड़के से कहा—'तेरे मामा कहते हैं, अब से तुझे उनके

दल के साथ जाना पड़ेगा।'

वह मा की ओर निर्निमेष कुछ क्षण तक देखते रहकर बोला 'राम, राम ! मां होकर तुम ऐसा कह रही हो मां!'

निताई की मां को जैसे काठ मार गया।

उसके मामा की आंखें लाल हो रही थीं, वह उसके सामने आ खड़े हुए और बोले—'क्या कहता रे माँ को ! मुझ से बोलें ?'

निताई उस समय अपनी पुरानी कापी में रामायण की नक़ल कर लिपि बोध का अभ्यास कर रहा था। उसने निर्भय उत्तर दिया—'लिख रहा हूँ।'

'लिखता है ?' गौर ने कापी और किताब झपट कर फेंक दी। निताई भी उठ खड़ा हुआ। धीरे-धीरे मामा को पीछे छोड़ कर किताब और कापी उठा ली और उसी धीर-गम्भीर चाल में आगे बढ़ गया। अपने घर और मोहल्ले को त्याग कर उसी दिन वह घनश्याम गोसाईं के घर में नौकरी पर बहाल हो गया।

गोसाईं जी पक्के वैष्णव हैं। परिवार में केवल है सन्तानहीना स्थूल कार्य गृहिणी। दोनों ही दूध के प्रेमी हैं। घर में दो गाय है। आज तक वे गाय अपनी इच्छा से रात भर गायब रहतीं और सवेरे आकर दूध दे जातीं। मगर आजकल कलि काल में गांव के लोगों की गौ भक्ति बिल्कुल विलुप्त हो गयी है, उन लोगों ने गोसाईं जी की गाय को पन्द्रह दिनों के भीतर दो बार खूब पीटा है। इसीलिये बाध्य होकर गोसाईं जी ने गौ-परिचर्या के लिये एक आदमी बहाल किया। निताई से उन की शर्त तय हुई—वह गौओं की देख भाल करेगा, घर के जूठे बर्तन साफ करेगा, आवश्यकता पड़ने पर इधर-उधर जाना भी पड़ेगा और रात को घर की चौकीदारी करेगा। गोसाईं जी का ब्याज का धन्धा है। एक मन धान से कार बार प्रारम्भ कर आज सूद ब्याज की बदौलत सात सौ मन धान होता है। खलिहान में धान का एक स्तूप खड़ा है। गोसाईं जी को अपने जीर्ण-शीर्ण स्वास्थ की सांसारिक चिन्ता अब तक

खाये जा रही थी, किन्तु वे बलिष्ठ नौजवान निताई को पाकर बड़े प्रसन्न हुए। निताई गोसाईं जी के घर में ही उठने-बैठने ही नहीं रहने भी लगा।

कई दिनों बाद ही उस दिन घनी अंधेरी रात थी। वैसी गहन अंधेरी रात में गोसाईं जी ने पुकारा—'निताई !'

बाहर खट-पट शब्द हो रहा था, जिससे कि निताई की नींद टूट गयी थी, वह जगा था। वह फुसफुसाहट के स्वर में ही बोला—'जी, मैं सुन रहा हूँ।'

'गड़बड़ी न करना अन्दर चले आओ।' गोसाईं जी आगे बढ़े। निताई गोसाईं जी को भयभीत होते देखकर श्रद्धा से भर उठा। गोसाईं बाहर का दरवाजा खोल कर आये। बाहर चार आदमी थे, उन के सर पर थे भरे हुए चार बोरे; जिसके बोझ से वे हांप और काँप रहे थे। दरवाजा खुलते ही उन लोगों ने बोरों को धान के खलिहान में पुनः उड़ेल दिया। रात के अंधेरे में भी निताई ने उन लोगों को पहचाना, चारों के चारों ही विख्यात धान-चोर थे। वह सबेरा होते ही गोसाईं जी से हाथ जोड़ कर बोला—'भगवन मैं काम नहीं कर सकूँगा ?'

'क्यों ?'

'यों ही !'

'तब मैं तुझे एक पैसा भी नहीं दूँगा।'

निताई ने इसका इसका कोई उत्तर नहीं दिया। अपने कपड़े और पुस्तकें लेकर वह वहाँ से चल पड़ा। वह आया गांव के स्टेशन पर।

स्टेशन का प्वाईंटमन राजा उसका दोस्त है। राजा लाल अजीब आदमी है। विगत महायुद्ध के समय वह नौजवान था,

घटना क्रम से मेसोपोटेनिया में फौज में कुली बनकर पहुँच गया था और वहाँ से लौटने के बाद आज वह लाइट रेलवे में काम कर रहा है। आदमी दिल का अच्छा है—मन का साफ दिल दरियाव। अर्थ का अनर्थ बकता रहता है—गलत सलत हिन्दी, साहबी ठाट में। घड़ी की सुई की तरह ड्यूटी देता है। सात आठ मरतबे चाय पीता है, दारु भी खूब पीता है, बहुत भयंकर रूप से चिल्लाता रहता है। बिना यह विचार किये कि यह पत्नी है, यह पुत्र है, उन्हें मारता रहता है। उसका विवाह एक नहीं अनेक हुए है। यहाँ आने पर उसने एक और नया विवाह किया। राजा से निताई की दोस्ती बहुत दिनों से है, यानी जब से राजा यहाँ आया है तब से उसके साथ दोस्ती है—यही प्राय: तीन वर्ष से।

निताई उस दिन भी स्टेशन पर यों ही टहलने आया था। राजा का लड़का गाड़ी आने का घण्टा होते ही चिल्ला रहा था—'हट जाओ! हटो, लाइन के किनारे से हट जाओ।'

निताई को यह बड़ा अच्छा लगा था, उसने उससे पूछा था—'वाह, तुम किस के लड़के हो?'

'मैं, राजा का लड़का हूँ।'

—'राजा का लड़का? क्या बात है। तब तो तुम राजकुमार हो।'

राजा करीब ही खड़ा था। उसने निताई की बात सुनकर हँस कर उत्तर दिया था और फिर उसने उससे दोस्ती गांठ ली। ट्रेन पास हो गई तब राजा निताई को पकड़ कर अपने क्वाटर में ले गया। अपनी पत्नी को बोला—'यह मेरा दोस्त! बहुत उम्दा आदमी है! गोबंधन को कहता है—राजा का बेटा, राजकुमार!' इतना कह कर वह हँस पड़ा–हा हा कर!

निताई उत्साह में भाट् कवियों की नकल उतारकर यानी एक हाथ कान पर रख दूसरे हाथ की मुद्रा बनाकर झूमता हुआ रामायण की

याद कर गाने लगा :—

'राजा का बेटा राजकुमार उसके सर पर ताज
खाता है वह खस्ता गजा, जाने जगत जहान'

राजा उछल पड़ा और अपने बाप के जमाने का ढोल उठा लाया तथा लड़के के हाथ में झांझ देकर ढोलक पीटने लगा। यह झांझ राजा के बाप ने उसे हमेशापुर के मेले में खरीद कर दिया था। उस दिन दोपहर को ही दरबार जैसे लग गया राजा के घर में। निताई राजा के लड़के को राजकुमार कह कर ही शांत नहीं हुआ। राजा के परिवार का भी गुणगान किया उसने :—

'राजा के घर की घरनी भाई, है बड़ी महारानी
शाम सबेरे खाती है वह खाना खूब मन मानी
जाने जगत जहान'

इसी समय एक और आ उपस्थित हुई—पन्द्रह-सोलह वर्ष की एक नवयुवती। उसका रंग काला है लेकिन उसके सम्पूर्ण शरीर से पद्य नाभ की तरह आभा विकीर्ण हो रही है। वह पहने है देशी तांत की साड़ी। उसका काला शरीर साड़ी के आवरण में बहुत निखर गया है। उसके सर पर कपड़े की बीड़ी के ऊपर चमकती हुई एक पीतल की छोटी गगरी रखी है और हाथ में छोटा सा गिलास वह लिये है। यह राजा की साली है, पड़ोस के गांव की दुल्हन। वह रोज इस गांव में दूध देने आती है। राजा के स्टेशन पर जिस प्रकार घड़ी की सूई की तरह गाड़ी आती उसी प्रकार यह छोकरी भी ठीक समय पर पहुँचती है। पश्चिम के दोपहर की अनुगामिनी छाया की तरह। उसकी सरल भयभीत चितवन में विस्मय काले पानी की स्वच्छता की तरह ही भान होता। वह विस्मय से कुछ क्षण तक यह दृश्य देखकर अचानक हँसने लगी थी—नि संकोच, खिलखिलाहट पूर्ण हँसी।

राजा की पत्नी मगर बहुत कठोर स्त्री है। वह अपनी बहन को धमकी देती रही—'दांत निपोर कर हँस मत। बेहया कहीं की।'

एक मुहूरत में ही ऊसकी हँसी रुक गयी। मगर वह नाराज नहीं हुई, और न दुःखी हुई। आसानी से शासन के आधीन नरम बेंत की तरह विनय पूर्ण लचक उसके स्वभाव का गुण है। उसका शरीर सिर्फ लता की तरह नहीं है, मन भी उसका शरीर के अनुसार है।

निताई भी चुप हो गया था। लय की पकड़ का समय पार हो गया था फिर भी उसने गीत नहीं गाया। यह देखकर राजा ने ढोलक बजाना बन्द कर दिया। उसने छोकरी से कहा—'देखती क्या है री ठाकुर जी, यह मेरा दोस्त बहुत कमाल का आदमी है। हमारा नाम है राजा तो गोवंधन का नाम इसने दिया राजकुमार, तुम्हारी बहन को बोला रानी!' और वह अट्टहास कर उठा।

साथ-साथ ठाकुर जी की हँसी का बांध टूट पड़ा। हँसते-हँसते उसके सर से आँचल खिसक गया था और आँखों से खुशी के आँसू ढुलक पड़े थे। फिर भी उसकी हंसी रुकी नहीं।

हंसी रोक कर राजा बोला—'उस्ताद यह काली कलूटी मेरी साली है, इसको तुम क्या नाम दोगे?'

निताई मुग्ध दृष्टि से छोकरी को देख रहा, उसके सर्वांग से कच्चे पत्ते की तरह कोमलता और सौन्दर्य का आभास उसे मिलता था उसने कहा था—'ठाकुर जी अरे वाह, इसका कोई दूसरा नाम हो ही नहीं सकता। मेरी ठाकुर जी भी ठाकुर जी और राजा की ठाकुर जी भी ठाकुर जी ही रहेगी।'

राजा निताई की तर्क-युक्ति से अवाक हो उठा था। गम्भीरता पूर्वक गर्दन हिलाकर उसने यह स्वीकार किया था—'हां,हां ठीक, ठीक।'

इसके बाद राजा ने निकाली शराब की बोतल—'आओ भाई उस्ताद।'

निताई ने हाथ जोड़ कर विनम्रता पूर्वक विरोध किया था—'मुझे माफ करो भाई राजन! यह सब मैं छूता नहीं?'

'तब? तब तुम क्या पिओगे?'

ठाकुरजी ने कहा था—'दूध, पियेगा—दूध ।' और पुनः वही खिलखिलाहट ।

निताई मुस्कराया था—'हां, दूध पी सकता हूं । इससे बढ़ कर और क्या है दुनियाँ में ? देव दुर्लभ ।'

ठाकुरजी ने सचमुच बड़े से गिलास में दूध भर दिया और निताई के सामने रख कर अपने सलज्ज स्वभाव के कारण भाग गयी । यह सब पुरानी बातें है ।

राजा अब उसका पुराना दोस्त है । उसके गुणों से मुग्ध भक्त ।

गोसाईं जी की नौकरी छोड़ कर निताई आया स्टेशन पर । सब कुछ सुन कर राजा ने कहा—'बहुत अच्छा किया उस्ताद, बहुत ठीक ।'

'मगर मुझे तुम्हें यहाँ थोड़ी जगह देनी पड़ेगी ।'

'दूँगा, अलबत्त दूँगा, जरूर दूँगा ।'

'यही रहूँगा और स्टेशन पर बोझा ढोऊंगा । इसी से मेरा गुजारा हो जायेगा ।

रेलवे कनस्ट्रकशन के समय यह स्टेशन एक प्रधान कार्य क्षेत्र बन गया था । उस समय आवश्यकतानुसार बहुत से बंगले बने थे, वे सब के सब अभी भी ज्यों के त्यों है । उन्हीं में से एक में राजा ने उस्ताद के रहने की व्यवस्था कर दी । निताई अब स्टेशन पर कुली का काम करता है । आने जाने वालों का सामान इधर से उधर सर पर उठा कर पहुँचा देता है । गाँवों में भी वह बोझा लेकर पहुँचा आता है । आमदनी तो अच्छी हो जाती है । स्टेशन पर गाड़ी में माल चढ़ाने और उतारने का दो पैसे मिलता है गाँव में ले जाने के लिए चार पैसे, पास पड़ोस के गाँव में ले जाने के लिए कीमत दूरी के अनुसार है । अन्य कुलियों की अपेक्षा निताई अधिक कमाता है क्योंकि उसका सहायक स्वयं राजा है ।

स्टेशन की चाय की दूकान उन लोगों का अड्डा है । वहाँ का कर्ता-

धर्ता है नाटे मामा। वह रहस्य पूर्ण ढंग से निताई से कहता है—राजा—बैठो।

मामा की दूकान पर उपस्थित वात व्याधि का सजीव विज्ञापन विप्रपद कहता है—'बैठ क्या रे, दरबारी कवि है, राजा के दरबार का कवि।'

निताई विप्रपद का चरण रज लेकर सर पर लगाता है और बहुत खुश हो उठता है। विप्रपद उसे बहुत अच्छा लगता है। इतने कष्ट में भी ऐसे खुश मिजाज-आदमी बहुत कम होते हैं। व्यात व्याधि से पीड़ित विप्रपद सवेरे उठ कर किसी तरह लंगड़ाता-लंगड़ाता स्टेशन पर आ जाता है, मामा की दूकान पर और लोगों को चाय पीने को उत्साहित करता है तथा व्यर्थ की बकवास करता रहता है। शरीर उसका जितना टेढ़ा है, जबान उससे अधिक वक्र है। आदमी मजेदार है। वसुधैव कुटुम्ब कम ! सबेरे-सबेरे आता है और बारह बजे घर लौट कर जाता है भोजन करने, और फिर करीब तीन बजे लंगड़ाता हुआ स्टेशन पर आकर बैठ जाता है और लौटता है दस बजे की ट्रेन पास कर। विप्रपद के साथ निताई की खूब पटती है। निताईचरण के रज लेने पर विप्रपद स्वयं रचित संस्कृत श्लोक का उच्चारण कर उसे आशीर्वाद देता है।

'भव कपि, महा कपि दग्धानन सलागूंल'

हाथ जोड़ कर निताई कहता है—'भगवन ! कपि का अर्थ मै समझता हूं।'

विप्रपद हँस कर अपनी गलती स्वीकार करता है—'ओ, कपि नहीं कवि, कवि। मेरी गलती हुई। अच्छा कवि तो तू है ही, जरा इस कविता का भाष्य कर तो—शकुनी ने खेला पासा, राज्य मिला दुर्योधन को, बाजी बदी युधिष्ठर ने, मगर भीम का बेटा घटोत्कच मरा किस पाप से ?'

निताई सुनते ही उठ खड़ा हुआ और गीत गाने लगता—ओ हो,

हो—ने !

राजा सोचता है, ढोलक उठा, आज तो बड़ा मजा आयेगा । मगर ऐसा होता नहीं है । बारह बजे की ट्रेन का घण्टा बजता है ।

दूर के जाने वाले मुसाफिर उसे मिलते हैं। स्टेशन के जमादार राजा कि सिफारिश से मुसाफिर निताई को ही अपना सामान देते । निताई का व्यवहार भी वे लोग पसन्द करते ।

मजूरी का मोल-तोल करने के जवाब में निताई कहता विनय के साथ—'भगवन् आकाश की ओर जरा देखिये', गर्मी के दिनों में कहता—'दिनमणी की किरण पर जरा विचार कीजिये' । बरसात के दिनों में कहता—'थहराये घर का खेल तो देखिए सरकार' जाड़े का दिन हुआ तो वह कहता—'शीत की बात पर जरा गौर कीजिये बाबू ।'

दोपहर के बाद अगर कहीं मोट लेकर जाता तो निताई राजा को कह जाता—'राजन, ठाकुर जी आये तो मेरा दूध लेकर रख लेना ।'

यहाँ रहने पर बारह बजे की ट्रेन को पास हो जाने पर निताई थोड़ा आगे प्वाईंट के पास के कदम्ब वृक्ष की ओर बढ़ जाता और उसी की छाया में खड़ा रहता । धूप रेलवे लाइन के घिसे हुए हिस्से पर पड़ कर एक मोटी रेखा की नाईं चम चम करती, निताई एक मन होकर, जहाँ से लाइन टेढ़ी होकर मुड़ गयी है, वहीं दृष्टि गड़ाये खड़ा रहता है । अचानक एक शुभ्र रेखा दिखाई पड़ती । उस रेखा के सर पर एक स्वर्ग बिन्दु, धीरे-धीरे वह एक रूप में बदल जाती । तात के मोटे सूत की रंगीन साड़ी—अस्त व्यस्त और काली, सुकेशी, सौन्दर्य शालनी एक छोकरी ! जिसके सर पर चमचमाती हुई स्वर्ण घट की नाईं पीतल की गगरी । वह कभी भी सर की गगरी को हाथ से नहीं पकड़ती । हाथ में दूध नापने के लिए एक ग्लास रखती है और दूसरा हाथ छन्द की गति में झूलता रहता है । वह तेज कदमों से चली आती है । वह चलती है तेजी के साथ और बोलती भी है द्रुत-भंगी में । यह वही है ठाकुर जी ।

निताई नशा नहीं करता, किन्तु दूध उसका प्रिय पेय है। चाय पीने की आदत भी उसकी क्रमशः बढ़ रही है। ठाकुरजी से वह रोज एक पाव दूध लेता है। दूध ले आते ही वह चाय का पानी चढ़ा देता है।

स्टेशन पर रोज तरह-तरह के लोगों का आना जाना है। आस-पास की खबरें स्टेशन पर बैठे बैठे ही मिलती रहती हैं। इसी प्रकार निताई को मिलती कवि-दरबार की खबरें, वह उल्लासित हो उठता। उस दिन शाम होते ही लाल किनारे की धोती और आधे बाँह का कुर्ता पहन कर, सर पर पगड़ी बाँध लेता और गुनगुनाता हुआ राजा को पुकारता है। मिलिटरी राजा साढ़े दस बजे वाली ट्रेन को पास करा कर कहता है—'फाइव मिनट उस्ताद।'

पाँच मिनट भी उसे नहीं लगा, तीन मिनट में ही रेलवे कम्पनी का दिया हुआ नीला कोट पहन कर एक बत्ती और लाठी हाथ में लेकर स्टेशन पर निकल पड़ता और सबेरा होने के पहले ही घर लौट आता। सिर्फ कवि दरबार ही नहीं, नौटंकी, मेला—यह सब कुछ निताई को अच्छा लगता है। दीपोत्सव जन कोलाहल मय राहों में अगर समस्त जीवन निताई का कट जाये तो बहुत अच्छा हो।

और अचानक माता चामुण्डा के मेले में निताई सचमुच कवि हो उठा।

४

कवि दरबार के बाद चण्डी माता का प्रसाद और सूखे हुए बेल के पत्तों की माला गले में डाले निताई लौटा—उस समय के दिग्वजयी कवियों की ही तरह। वह मन ही मन ऐसा अनुभव कर रहा था कि वह एक विशिष्ट व्यक्ति है, एक कवि है।

रास्ते भर उसे, उसके अपने वे लोग, जो इतने दिनों तक उससे कोई सम्बन्ध नही रखते थे, उसे घेरे रहे। मगर वह किसी की कुछ सुनने को तैयार नहीं था। राजा था उसका लंगोटिया यार। निताई के गौरव से उसकी छाती दूनी हो गयी, वह रास्ते पर चल रहा था। दरबार के कवि गौरव प्राप्त राजा की तरह ही। अनायास ही वह लोगों को सावधान करता चल रहा था—हट जाओ रास्ता छोड़ो। अरे शरीर पर क्यों गिरे आते हो? हट जाओ। वह आज इतना खुश था कि साहिबानी हिन्दी का प्रयोग अधिक हो गया था। राजा की बहू और ठाकुरजी इन लोगों के पीछे-पीछे आ रही थीं। निताई के सगे सम्बन्धियों से राजा की बहू बहुत कतरा रही थी—'तुम लोगों ने तो बेचारे को घर से निकाल दिया। इस्टीशन से तुम लोगों का घर तो इतना करीब है कि दीखता है, मगर एक दिन भी तो झाँकने तक नहीं आये?'

ठाकुर जी अन्धेरे में भयभीत दृष्टि नचाती हुई चल रही थी, और जब जो कुछ कहती भी उसके मुँह की ओर वह देखती रहती थी। पास के गाँव में ही उसकी ससुराल है, मेले के उपलक्ष्य में वह आज अपनी बहन के घर ही रहेगी, सवेरे उठ कर चली जायगी। उसकी बड़ी इच्छा थी निताई से कुछ कहने की, यही कि तुमने यह सब कुछ कैसे

सीखा ? तुम जब दीदी के घर में गाते थे, तब हम लोग हंसा करती थीं बापरे, इतने मन सेधू के सामने, श्रोह इतने बड़े गवैये के साथ—

कल्पना मात्र से ही रात के अन्धेरे की चादर में एक दूसरे के श्राज्ञात में ही उसकी दृष्टि विस्मय से विस्फारित हो रही थी।

चण्डी स्थान से होती हुई डोमपाड़ा से ही स्टेशन की सड़क गयी है। श्राज निताई के सगे सम्बन्धियों ने उसे श्रादर के साथ घर बुलाया—'चल, घर चल !'

निताई की मा अब यहाँ नहीं रहती, वह अपनी बेटी के घर यानी दामाद के श्राश्रय में है। दामाद इस इलाके का नामी गुण्डा है। रात को डकैती भी करता है, चोरी से शराब बना कर बेचता है श्रौर गिरे भहराये झोंपड़ों में बैठ कर शराब पीता है। निताई की मा ऐसे के घर पेट की श्राग बुझाने के लिये ही रह रही है। निताई एक बार अपने टूटे भहराही झोंपड़े की श्रोर देख कर जरा हँसा, पुनः बोला—'नहीं में स्टेशन पर ही रहूँगा।'

राजा यह सुन कर गदगद हो कर बोला—'तुम अच्छे श्रादमी हो उस्ताद। हम लोगों को छोड़ कर तुम उन लोगों के पास नहीं गये, अपने श्रादमियों के घर।'

निताई फिर जरा हँसा।

भीड़ अब तक थोड़ी कम हो गयी थी। साथ के लोग अपने-अपने घर में चले गये थे। निताई श्रौर राजा का परिवार स्टेशन की श्रोर चले जा रहे थे। स्टेशन पर पहुँच कर राजा ने कहा—'अरे भाई कुछ खा पी लो।'

अपने घर की बत्ती जलाते हुए निताई ने संक्षेप में ही उत्तर दिया—'नहीं।' वह साथ ही बिस्तरे पर लेट गया। वह सोच रहा था इस इलाके के प्रसिद्ध भाट कवि तारनमंडल की बातें। तारन कवि है कैसा श्रादमी ? हजारों की सख्या में जिसे देखने के लिए भीड़ लगती रही है। उसने जब पहली बार तारन कवि का गीत सुना उस

समय की स्मृति आज भी ताजी है। इसी चण्डी माता के मेले में ही, ओह कितनी भीड़ थी और कितना हो हल्ला मचा था। उस समय मेला भी कितने ठाट से लगता था। उस समय मेले में शान्ति कायम रखने के लिए चार-पांच चपरासी नियुक्त किये जाते थे। उनके साथ रहते बाबुओं के खास दरबान और बाबू भी होते। फिर भी गोलमाल और गड़बड़ी मचती ही थी। निताई को यह भी ख्याल आया कि जब दरबार में तारन कवि आ खड़े हुए थे तो अशान्त जनता एक पल में ही कैसी शान्त हो गई थी। वह लम्बा चौड़ा शरीर, सर के सफेद बाल पकी हुई घनी मूछें, ललाट पर सिन्दूर का बड़ा सा महाबीरी टीका, छाती पर अनेक चांदी सोने के चमकते हुए माडल, लाल-लाल, बड़ी-बड़ी आंखें !

दरबार में एक ओर चौकी पर कुछ बाबू बैठे थे। वे लोग भी बिल्कुल धीर गम्भीर हो कर बैठ गये थे।

और कैसे थे उसके गीत ! इसके बाद से निताई तो उससे इतना प्रभावित हुआ कि आस-पास में जब कभी भी उसका गीत होता वह वहाँ अवश्य जाता। एक बार तो उसने भीड़ को चीर कर तारन कवि के चरण रज लेकर मस्तिष्क पर लगाया है। तब से ही उसकी यह इच्छा है कि वह भी एक कवि बनेगा। उसकी इच्छा है कि वह तारन कवि का शगिर्द होकर उनको गुरू बना लेगा। मगर वे मर गये। शराब पी-पी कर उन्होंने अपना प्राण त्यागा है। तारन कवि में यह एक बड़ा दोष था कि वे बहुत शराब पीते थे। उनके लिए भरी मजलिस में ही बोतल खुलती और शराब ढाली जाती थी। सभी के सामने वह शराब पीते थे।

निताई का ख्याल है कि तारन कवि उसकी खोटी किस्मत के कारण ही मरे थे। बिना ऐसे गुरू के भला गुण कहा मिल सकता है। किसी विद्या का अन्त ही नहीं है। पढ़ सुनकर सीखना इस जीवन में सम्भव नहीं। रामायण, महाभारत ! अचानक उसके मन में आया कि आज महादेव

ने रामायण के जिस अंश को आधार बनाकर उसे लज्जित किया है, यह तो ठीक नहीं। वह उठ बैठा। एक तिपाई पर यत्न पूर्वक एक लाल रंग के कपड़े में बाँध कर वह अपनी पुस्तकों को रखता है। उसे खोल कर उसने रामायण निकाल ली। उसके पास वे सभी पुस्तकें आज भी सुरक्षित हैं जो उसे पाठशाला में पुरस्कार स्वरूप मिली थीं, वे बहुत-सी हैं। इसके अलावे उसने सड़कों पर पुस्तक के फटे हुए उड़ने वाले फेंके गये पन्नों का भी एक अच्छा खासा संग्रह कर लिया है। ग्रन्थ भी उसके पास कम नहीं हैं—कृतिवासी रामायण, काशीदास का महाभारत, कृष्ण शत नामा, रानी पांचाली, मानस का भासना, गंगा महात्म्य, स्थानीय नाटक मंडली के द्वारा फेंके गये कई फटे हुए, नाटक और हैं उसके पास दो-चार खाते, टूटा स्लेट-पेन्सिल, एक लेड पेन्सिल, एक टुकड़ा लाल और नीली पेन्सिल का भी है।

उस रात वह मनोयोग पूर्वक रामायण के पृष्ठ उलटने लगा। ठीक, महादेव ने उसे धोका दिया है। गलती उसकी नहीं है, महादेव ने गलत को सही किया हैं अपनी वाक्य पटुता के बल पर। वह सो गया। मगर उसे नींद किसी प्रकार भी नहीं आ रही थी। उसके मस्तिष्क की नसें जैसे तेजी के साथ चल रही थीं, कानों में अभी झांझ और ढोलक का स्वर गूंज रहा था—तिक, तिक तड़ांग, धिक !

मिलीटरी स्वभाव का राजा रात भर जागते रहकर भी सबेरे ठीक समय पर सोकर उठा। सबेरे सात बजे पहली गाड़ी इस स्टेशन को पार करती है। लड़ाई से लौटा राजा चाय पीता है, चाय का पानी चढ़ा कर स्टेशन पर वह जब झाड़ू लगा चुका तब उस्ताद को उसने पुकारा—'अरे, उस्ताद ! ओ उस्ताद !'

बिना उस्ताद के साथ बैठकर चाय पीने में राजा को मजा नहीं आता। उसकी रानी बहू अभी भी सो रही है। ठाकुर जी लेकिन ठीक

है। वह राजा के जगने से पहले ही उठ कर चली गयी है। उस बेचारी की ननद बड़ी मुँह जोर है। ऐसी ठाकुरजी को कष्ट देती है। राजा अब मन ही मन अफसोस करता है क्यों नहीं उसने ठाकुरजी से ही विवाह किया। सुडौल शरीर, वेगवती हंसती तो फूल और रोती है तो मोती झरते, मीठे स्वभाव की ठाकुरजी अपनी वाचाल जीजी से बहुत अच्छी हैं।

निताई की ओर से कोई उत्तर न पाकर राजा ने पुनः पुकारा—'एहो उस्ताद !'

इस बार निताई ने जड़ता भरे स्वर में उत्तर दिया—'हूँ !'

'अरे गाड़ी आ रही है भाई !'

'हूँ'

राजा लाचार होकर चला गया। फिर उसे आवाज नहीं दी। कल रात उस्ताद को बहुत मशक्कत करनी पड़ी है, आज उसे थोड़ा सोना ही चाहिये।

× × × ×

करीब नौ बजे निताई सोकर उठा।

कल रात की बात याद कर उसे थोड़ी हँसी आयी—कलकत्ते में नौकरी करने वाला बाबू उसे देखते ही कहेगा—तुम एक कवि हो। इसके बाद अंग्रेजी में जाने क्या, कहते हैं वे—ए पोइट !

भूतनाथ भी तारीफ करेगा—वाह रे निताई, वाह वाह !

एक एक कर पूरे गाँव के लोगों की प्रशंसा और विस्मय विस्फारित आँखें उसके कल्पना राज्य में साकार हो उठीं। विप्रपद ठाकुर तो बिल्कुल गाँव को सर पर उठा लेगा। जरा स्टेशन पर जाकर बैठे तो इस साढ़े नौ बजे वाली गाड़ी के मुसाफिरों के द्वारा उसके कवि होने की ख्याति विप्रपद अपने स्वभाव के कारण कटुआ तक फैला देगा। कल का दूध, चाय और चीनी सभी तो घर में ही है। फिर उसने घर में चाय तैयार नहीं की। चाय का बर्तन हाथ में लेकर वह धीरे-धीरे स्टे-

शन की चाय की दूकान पर आ हाजिर हुआ—अपने होठों पर मन्द हँसी की रेखा सँजोये।

विप्रपद निताई को देखते ही समा बाँध बैठा—'अरे, अबे, ऐ, सब चुप, चुप।' इसके बाद उसने निताई का स्वागत करते हुए कहा—'बलिहारी है, बलिहारी! जय रामचन्द्र की! वाह कल तो तुमने वास्तव में लङ्का-काण्ड की रचना कर दी! वाह रे भाई कपिवर!'

यह भी एक आश्चर्य ही है कि विप्रपद के इस मजाक से निताई को चोट पहुँची–गहरी चोट! वह गम्भीर हो उठा।

लेकिन विप्रपद ने उसके इस परिवर्तन पर ध्यान नहीं दिया, वह उत्तर न पाकर पुनः बोला—'कड़ी क्या थी तेरी जरा बता तो—शायद यही—

'ऊँय, ऊँय, खैनीखोर, खैनिखोर ऊँय!

चुप रे बेटा, महादेव चुप!

यही न?' इतना कह कर वह जोर से हँसने लगा।

अब निताई हाथ जोड़ कर गम्भीर होकर बोला—'जी हाँ भगवन! मूर्ख आदमी ठहरा, छोटी जाति है, बन्दर, उल्लू, हनुमान, जम्बू जो कुछ कहिये वही थोड़ा है। क्यों चाय वाले, चाय दो!'

तब उसने इतना कह कर अपना चाय का बर्तन दूकानदार मामा के सामने बढ़ा दिया और खूंट में बँधे पैसे खोलने लगा।

दूकानदार बनिये मामा ने चाय देते हुए पूछा—'अरे आज मामा न कह कर चाय वाले कहता है, सम्बन्ध तोड़ लोगे क्या निताई?'

निताई ने इसका कोई जवाब नहीं दिया। मामा ने ही कहा—'कुछ भी हो कल निताई ने बहुत अच्छा गीत गाया है।'

विप्रपद जल्दी से एक गोयठा उठा लाया और उसमें छेद कर सूत पहनाते हुए बोला—'आज कवि को एक मेडल दूंगा–इनाम में।'

निताई चाय का बर्तन उठा कर चुपचाप चला गया।

उधर साढ़े नौ बजे वाली गाड़ी प्लेटफार्म पर आ लगी है। विप्रपद

ग्रौर बनिये मामा ने यह सोचा कि निताई मोट के लिये चला गया। मगर प्लेटफार्म से राजा उसे पुकार रहा था—'ग्रो उस्ताद, उस्ताद जी !'

कोई उत्तर न पाकर राजा स्वयं दौड़ा ग्राया। बनिये मामा ने कहा—'ग्रभी, ग्रभी तो यहाँ से गया है। प्लेटफार्म पर नहीं गया ?'

इधर-उधर राजा ने देखा—निताई चला जा रहा है ग्रपने घर की ग्रोर, दौड़ कर उसने उसे पकड़ा।

'एक मोट तुम्हारे लिये रखवाया है भाई। एक बैग ग्रौर छोटा-सा एक बिस्तरा।'

निताई ने गर्दन हिला कर उत्तर दिया—'नहीं।'

'ग्ररे वाह, बड़े बाबू के जमाई हैं ! खूब बकशीस मिलेगी। दो ग्राने तो जरूर।'

'नहीं'

'क्यों ? तबियत तो ठीक है न ?'

'हां'

'तब ?' राजा विस्मित हो उठा।

निताई गम्भीर ग्रौर मन्द हँस-हँस कर बोला—'ग्रब कुली का काम नहीं करूँगा राजन।'

राजा को जैसे काठ मार गया।

५

निताई घर आकर रामायण खोलकर बैठ गया। एक गहरी सांस फेंक कर अनमनस्क भाव से ही उसने रामायण खोली थीं। विप्रपद की बातों से उसे मर्मांतिक चोट पहुँची थी। उसने बार-बार यह कह कर अपने मन को संतोष देना चाहा—ब्राह्मण वंश का मूर्ख क्या जाने! लेकिन किसी भी तरह उसका मन नहीं मान रहा था। रामायण के खोलते ही सर्व प्रथम उसकी आंखों में पड़ी—रत्नाकार पंडित की कहानी। बहुत बार उसने इस कहानी को पढ़ा है। लेकिन आज यह कहानी नये ढंग से, नयी मालूम पड़ी उसे। पढ़ने के पहले ही जानी हुई कथा उसके मन में जाग गयी और साथ ही उसकी आखें भी डबडबा आईं। आंखें पोंछ कर वह पढ़ने लगा:

'राम नाम ब्रह्मा स्थान में पाया रत्नाकर
उसी नाम को जपता रहा वह साठ हजार बरस।'

बाहर से राजा ने उसे पुकारा—'उस्ताद!'

उदासीनता पूर्वक निताई ने उसका आह्वान किया—'आओ राजन, आओ।'

राजा अन्दर आया और बैठने के बाद प्रश्न किया—'तुम्हें क्या हुआ है भाई?'

निताई ने हँस कर उत्तर दिया—'सुनो, पहले यह कहानी सुनो।'

'धत्, धत्' राजा ने कहा—'इस लिखा-पढ़ी ने तुम्हारा दिमाग खराब कर दिया।'

निताई तब पढ़ना शुरू कर चुका था। राजा एक बीड़ी जला कर सुनने लगा। कुछ क्षणों में ही वह तन्मय हो गया।

'देकर बरदान ब्रह्मा गये अपने भवन

आदि काण्ड रामायण है कृतिवास विलक्षण',

पढ़ना शेष कर निताई राजा के मुँह की ओर देखने लगा। राजा अब तक बर्फ की तरह गल चुका था। उसने हाथ जोड़ कर सर तक ले जाकर प्रणाम किया और कहा—'सियावर रामचन्द्र की जय।'

इसके बाद निताई की तारीफ शुरू हुई—'बहुत अच्छा पढ़ते हो तुम उस्ताद !'

इस बार निताई ने गम्भीर होकर कहा—'राजन ! अब तुम्हीं सोचो।'

राजा ने आश्चर्य से पूछा—'क्या ?'

खिड़की से रेल की पटरी पर निगाह दौड़ाते हुए निताई ने दूर बहुत दूर एक टक देखते हुए कहा—'रत्नाकर मान लो कवि थे, और वे डकैती करते थे, हत्या करते थे ?'

'अरे बाप रे, बाप' राजा बोल उठा—'कवि ऐसा होता है उस्ताद !'

'तब, कल रात की बात सोचो। चारों ओर यह फैल गया कि मैं कवि हूँ !'

'जरूर, जरूर !'

'तब क्या मेरा यह कुली का काम करना उचित है ? बाल्मिकी मुनि की बात छोड़ दो। किससे किसकी तुलना। वे भगवान के अवतार थे, देवता ! लेकिन मैं भी तो कवि हूँ—कवि !'

अब राजा की समझ में सब कुछ आ गया। वह कुछ श्रद्धा और कुछ विस्मय से निताई की ओर देखता रहा—एक टक !

'कहो राजन ! अब क्या मेरे लिये यह काम करना शोभनीय है ? लोग कहेंगे—कवि बोझा ढोता है, कुली है !'

'हाँ, यह बात ठीक है।' लेकिन तत्क्षण ही चिन्तित होकर राजा ने कहा—'लेकिन एक बात है उस्ताद !'

'कहो, ?' राजा के मुँह की ओर देखते रह कर निताई ने प्रश्न किया।

'लेकिन, कोई धन्धा तो करना ही होगा भाई, पेट तो भरना ही पड़ेगा।'

बार-बार गर्दन हिलाकर निताई ने कहा—'यह मैं नहीं सोचता राजन ! दो वक्त न सही, एक वक्त ही खाकर रहूँगा। यह भी जिस दिन नहीं जुटेगा, उस दिन उपवास ही कर लूँगा।' इसके पश्चात् उसका स्वर गम्भीर हो उठा और मन की दृढ़ता वाणी में प्रकट हुई— 'और जब परमात्मा ने मुझे कवि बना दिया है, तब—!' निताई पूर्ववत गर्दन हिलाकर अस्वीकार करता रहा—'नहीं, कदापि नहीं, तब वह बोझ नहीं ढोयेगा।'

राजा भी गम्भीरता पूर्वक सोच रहा था, वह एक दीर्घ स्वांस फेंककर सरल रूप से बोला—'नहीं, अब तुम्हारे लिये छोटा काम करना ठीक नहीं। ऊँ हुँ। नहीं, कभी नहीं।"

राजा के प्रति निताई के प्रेम की सीमा नहीं रही। एक आवेग में वह बोला—'तुम मेरे सच्चे दोस्त हो राजन।'

'धन्य हो गया उस्ताद, तुम्हारा दोस्त होकर तो मैं धन्य हो गया।' राजा की उत्कण्ठा की भी सीमा नहीं रही।

इसका उत्तर निताई ने गहरी सांस लेकर दिया—'आज मुझे बहुत चोट पहुँची है राजन ! मन बहुत दुःखी हो उठा है।'

'दुःख, ? किसने तुम्हें दुःख दिया भाई ?'

'वही, तुम्हारा विप्रपद ठाकुर। मुझे कहा उसने राजा के कपिवर, मतलब, तुम्हारा बन्दर।'

सुनते ही राजा सम्भल कर बैठ गया। उसके मिलिटरी स्वभाव में उग्रता आयी। उसने क्रोधित होकर निताई से पूछा—'जवाब तुमने क्यों नहीं दिया ?'

'जवाब देता राजन, किन्तु सम्भल गया। ब्राह्मण वंश के मूर्ख की अपेक्षा कपि बहुत अच्छा है।'

निताई बोला—

'क्षमा प्रेम का मूल है
प्रति हिंसा है शूल !'

इस नीति वाक्य को सस्वर उल्लेख कर निताई ने कहा—'समझे राजन ! मैंने क्षमा किया ।'

राजन उस पर मुग्ध हो उठा । कुछ क्षण मौन रह कर उसने कहा—'बहुत ठीक किया ।' इसके बाद पुनः उसने पूछा—'तब क्या करने का इरादा है उस्ताद । कुछ तो करना ही पड़ेगा भाई । पेट की तरह नासमझ तो संसार नहीं है ।'

'मैं एक दूकान खोलूँगा ।'

'दूकान ?'

'हाँ, दूकान । पान-बीड़ी की दूकान । स्वयं बीड़ी बाँधूँगा और स्टेशन में उसे बड़ के नीचे बैठकर बेचूँगा । दो-चार पैकेट सिगरेट भी रख लूँगा ।'

राजन उत्साहित हो उठा—'बहुत अच्छा होगा उस्ताद !'

लेकिन निताई का चेहरा जरा मलीन हो गया, वह बोला—'लेकिन *बनिया मामा मुझ पर नाराज हो जायेगा । मगर—'*

'अगर-मगर कुछ नहीं, उसके नाराज होने से क्या होगा ? वह नाराज होगा तो अपने घर में दो रोटी ज्यादा खायेगा ।'

'नहीं, राजन मैं किसी को नुकसान पहुँचाना नहीं चाहता । इतना कह कर वह उत्फुल्ल हो उठा—'अच्छा राजन अगर अपनी जाति का पेशा करूँ यानी बाँस की टोकरी आदि बनाऊँ तो कैसा रहे ?'

'सबसे अच्छा ।'

'मगर विप्रपद क्या कहेगा जानते हो ?' डोम वृत्ति की ओर उँगली उठा कर, कहेगा—'साला डोम है ।'

दाँत पर दाँत चढ़ाकर राजा बोला —'तो एक दिन दो हाथ जम जायेंगे साले ब्राह्मण पर !'

'नहीं, नहीं हजार हो, है तो वह ब्राह्मण ही ! राजन ब्राह्मण

पूज्यनीय हैं, उनका अपमान करने पर प्रलय मच जाता है। यह शास्त्र का कहना है। और फिर,—अब निताई थोड़ा हँसकर बोला—'कहने दो उसे डोम, जब मैं डोम का ही लड़का हूँ, तब किसी के डोम कहने से नाराज होना ठीक नहीं है।'

'बस, बस, बस। अजी क्या है। बोलने दो डोम।' राजन को भी कोई आपत्ति न हुई—'सबसे अच्छा काम है दुकान खोलो और शादी करो, घर गृहस्थी बसाओ :'

बनावटी उपेक्षा के साथ निताई मुँह बनाकर बोला—'धत।'

'धत क्यों भाई? यह सब नहीं चलेगा।'

'अच्छा पहले एक कहानी सुनो।'

कहानी से राजन को बड़ा प्रम है। वह बीड़ी सुलगा कर जम कर बठ गया। निताई कहने लगा मूर्ख सियार की कथा। कहानी खत्मकर निताई ने कहा—'तुमने मूर्खता की है, इसलिये मैं भी बेवकूफी करूँगा, ऐसा नहीं हो सकता राजन!'

पहले तो राजन हँस पड़ा लेकिन बाद में बोला—'यह बात तो ठीक नहीं है उस्ताद! दुनिया में आकर शादी नहीं करोगे तो करोगे क्या?'

निताई बोला—'तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है राजन! ब्याह कर मैं मुसीबत में पड़ जाऊंगा। हम लोगों की जाति में एक भी ऐसी लड़की नहीं मिलेगी जो विद्या का मर्म समझती हो। केवल दिन रात लड़ाई-झगड़ा, इसके अलावे—' वाक्य पूरा करने के पहले ही वह हँसने लगा।

भौं टेढ़ी कर राजा ने प्रश्न किया—'क्या कहते कहते रुके उस्ताद?'

हँस कर उसने कहा—'हम ठहरे कवि। हम लोगों के हृदय में, जिस-तिस के लिये जगह कहाँ?'

राजा हँसते-हँसते लोट-पोट हो गया। राजा की हँसी बहुत विकट होती है। मगर अचानक उसकी हंसी रुक गयी। गम्भीर होकर बारम्बार

गर्दन हिलाकर उसने सत्य को स्वीकार कर कहा—'ठीक बात है, ठीक कहते हो तुम। लड़ाई में जब हम गये तो वहाँ देखी बिल्कुल फूल की तरह औरत। इरानी औरत देखी है, उस्ताद इरानी माल? उससे भी बढ़िया और ताजा—'

राजा की बात खत्म हो गयी, लेकिन उसकी स्मृति शेष नहीं हुई। वह आखें फाड़े खिड़की से वाहर की ओर देखता रहा—विस्तीर्ण खेतों की ओर।

निताई भी देख रहा था—रेल की बिखरी पटरियाँ जहाँ जाकर एक बिन्दु में परिणत हो गयी हैं.उसी छोर पर वह आँखें गड़ाये रहा। सहसा वहीं से, उसी बिन्दु से उदित हुई एक सफेद रेखा, रेखा के सर पर का स्वर्ण बिन्दु ऐसे ऊपर उठने लगा जैसे क्षितिज से सूर्य उदित होता है या जैसे कली फूल में चटखती है क्षण-क्षण में।

उन दोनों की मौनता को भंग किया राजा की बहू ने अपनी तीखी और भारी आवाज से। राजा की बहू बड़बड़ा रही है। राजा यहाँ बैठा गप्पें हाँक रहा है, इसी लिये वह अपने भाग्य को कोस रही थी।

'अरे वाहरे मेरा भाग्य, सबेरे से लेकर दोपहर तक मेरा घर-घर नहीं रहता। मेरा करम फूट गया था जो मैं ऐसे के पल्ले पड़ी। आग लगे ऐसे मरद के मुँह में।'

राजा के चेहरे पर क्रोध की रेखा खिंच आयी। निताई ने आशंका से पूछा—'कहाँ चले?'

'आता हूँ, अभी आता हूँ।' वह चला गया।

'राजन, राजन!' निताई उसके पीछे-पीछे आकर दरवाजे पर खड़ा हो गया। कुछ क्षण बाद राजा लौटा—हँसता हुआ। वह हँसते हुए जमीन पर लोट गया। निताई ने पूछा—'बात क्या है?'

निताई के इस प्रश्न से राजा की हँसी के क्रम में कोई रुकावट नहीं आयी। फिर भी बहुत मुश्किल से बोला—'भागा है'

निताई को समझने में देर नहीं लगी कि गाली-गलीज बकने वाली राजा की स्त्री राजा के रुद्र रूप को देखकर पीछवाई के दरवाजे से नौ-दो ग्यारह हो गई होगी। राजा उठ खड़ा हुआ, पीछे मुड़ कर देखने का नाटक कर वह बोला—'ऐसा देखा कि क्या कहूँ और जहाँ हमने एक कदम बढ़ाया कि वह भाग खड़ी हुई।'

यानी राजा को अपनी ओर आते देखकर वह दौड़ कर भागी और कुछ दूर जाकर मुड़कर उसने देखा है। साथ-ही-साथ राजा की हँसी और भी तेज होगयी।

· इसी समय वहाँ आ उपस्थित हुई—ठाकुरजी! वह पहने है मोटे सूत की धवल साड़ी, सर पर वही चमकती हुई पीतल की गागर जो दोपहर की धूप में सोने की तरह आँखों में चकाचौंध पैदा कर रही है।

निताई ने सादर अभिवादन किया—'आओ ठाकुर जी, आओ।'

ठाकुरजी राजा को इस प्रकार हँसते देखकर आश्चर्य में डूब गयी और राजा की ओर उँगली उठाकर उसने निताई से पूछा—अपने स्वाभाविक सरल तरल भाव से—'जीजा जी, इतने हँस क्यों रहे हैं?'

'अब तुम्हीं समझाओ इसे।' निताई बोला।

'दइया रे, दइया! यह कैसी हँसी! ऐसे काहे हँस रहे हो जीजाजी!'

यह कहते हुए उसे भी हँसी की छूत लग गयी। वह भी हँसने लगी—ही, ही ही। बहुत ही तेजी के साथ वीणा की झंकार की तरह हँसी।

अचानक राजा हँसते-हँसते रुक गया। ठाकुर जी की ओर उंगली उठाकर उसके हँसने के लिये वह नाराज हो उठा है। उसे लगा कि यह छोकरी ऐसे हँस कर उसका मजाक उड़ा रही है। बहुत बिगड़ कर राजा ने उसे धमकी दी—'अरी, अरी ओ निर्लज्ज! ही ही ही! कैसे दांत निपोरती है।'

इससे ठाकुर जी की हँसी और भी बढ़ गयी।

राजा ने विद्रूप कर कहा—'कोलतार की तरह तो रंग है और

सफेद दाँत निपोर कर हँस कैसे रही है। शर्म नहीं आती।'

इस बार छोकरी चोट खा कर शान्त हुई। कई क्षण तक चुप रही पुन: व्यवस्तता प्रकट करती हुई वह बोली—'लो, लो दूध ले लो, हमें देर ही रही है। कई घरों में जाना है, देर हो जायेगी तो वे नाराज होंगे।'

राजा ने कहा—'तुझे एक दिन पीटना पड़ेगा, जिस प्रकार तेरी दीदी को सड़कों पर पीटा जाता है, उसी प्रकार।' और राजा हँसने लगा! लेकिन ठाकुर जी नहीं हँसी। वह गुमसुम-सी सर नीचे कर गागर से दूध ढाल अपने गिलास को भरने के बाद बोली—'लाओ न बर्तन, दूध ले लो।'

निताई ने झटपट दूध का बर्तन उसके सामने लाकर रख दिया और कहा—'नाराज हो गयी तुम ? नहीं, नहीं नाराज न होओ!'

ठाकुर जी ने उत्तर नहीं दिया। दूध देकर वह चुपचाप चली गयी। पीछे से राजा ने मजाक में कहा—'लो, डाक गाड़ी चली गयी। अरे बाप रे बाप कितना तेज चलती है, यों भस, भस भस! ओह!'

मगर ठाकुर जी ने मुड़कर देखा तक नहीं।

निताई ने कहा—'राजन ऐसी बात तुम्हें नहीं कहनी चाहिये।'

किन्तु राजा इसे स्वीकार नहीं करता। क्यों नहीं कहनी चाहिये ? 'ऊँह!' कह कर उसने अपनी इस गलती पर जैसे पर्दा डाल दिया। साथ ही वह उठ खड़ा हुआ। डेढ़ बजे आने वाली ट्रेन के लिये घंटा देना होगा। इस ट्रेन की समय सूचिका है ठाकुर जी। जब दूध देकर—गाँव की ओर चल पड़ती है तब वह रोज स्टेशन पर जाता है। कभी-कभी उसे स्टेशन मास्टर पुकारते भी हैं—'राजा, ओ राजा!'

राजा उतर देता है—'हाजिर है हजूर!'

निताई अंगीठी गर्म करने बैठा। उसे एक मरतबा चाय पीनी होगी। दूकान के प्याले की चाय से उसका जी नहीं भरता। इसके अलावा आज उसकी तबियत भी अच्छी नहीं है। कल रात को परिश्रम

और जागरण की वजह उसका सारा शरीर टूट रहा है। सर में दर्द हो रहा है और कानों में अभी भी झाँझ और ढोलक की ध्वनि गूँज रही है। बिना चाय पिये उसे चैन नहीं है।

अंगीठी सुलगा कर एक मिट्टी की हडियाँ में चाय के लिये पानी चढ़ा कर वह चुपचाप बैठा रहा। उसका मन पुनः उदासी से घिर गया उ हूँ, राजन को ऐसा नहीं कहना चाहिये था। ठाकुर जी बहुत अच्छी है। आज वह बहुत-सी बातें करतीं बहुत कुछ कहने का अवसर था। कल की रात की बातें—कवि दरबार की बातें। उसे बहुत कष्ट पहुँचा है, इसीलिये तो वह चुपचाय चली गयी। कोलतार की तरह रंग।—ऐसी बात भी कही जाती है भला? एक दीर्घ साँस लेकर वह एक कड़ी गुनगुनाने लगा—

'है खराब गर काला, तो केश पके पर हो रोते क्यों?'

६

यह कड़ी बहुत अच्छी बन गयी है। निताई अपनी कविता पर आप मुग्ध हो उठा :

'है खराब गर काला, तो केश पकें पर हो रोते क्यों?'

उधर चाय का पानी खौल रहा था। निताई ने खौलते हुए पानी की पतीली चूल्हे से उतार कर उसमें चाय की पत्ती डाल कर उसे ढाँप दिया।

'खौलते हुए पानी में प्रत्येक आदमी के लिये एक-एक चम्मच डाल कर पाँच मिनट तक प्रतीक्षा करें'—बनिये मामू की चाय की दूकान पर चाय बनाने की इस विधि का उसने विज्ञापन देखा है। वह फिर

अपने मन में कड़ी दोहराने लगा—दूसरी कड़ी मन के मुताबिक नहीं बन रही थी। वह खिड़की से बाहर बहुत-सी काली चीजों को देखता रहा। फिर दूसरी कड़ी नहीं बनी। दूसरे दिन वह चाय बनाते समय एक से साठ तक पांच बार गिनती गिन जाता है। इसके बाद उसमें दूध चीनी मिलाता है और चाय तैयार हो जाती हैं। आज वह ऐसा नहीं कर सका, केवल कविता की दूसरी कड़ी गुनगुनाता रहा और मन में अपनी कविता की दूसरी पंक्ति को ढूँढता रहा। अचानक उसे चाय की याद आयी और उसने उसमें दूध चीनी मिला कर तैयार कर ली। अपनी चाय लेकर राजा के लिये एक बर्तन में उसने चाय ढँक कर रख दी तथा आप चला गया कदम्ब वृक्ष के नीचे। घने और पतले-पतले पत्ते की छाया उसे बड़ी भाती है। निताई कहता है—'बड़े खूबसूरत हैं पत्ते!' और चैत के अन्त में डालियों पर लाल फूल गदरा जाते हैं, तब निताई हमेशा इस गाछे के नीचे आ बैठता है। फूल के लालच से वहाँ बच्चे भी इकट्ठे होते हैं। निताई उन लोगों को झड़े हुए फूल देकर भगा देता है, उन्हें गाछ पर चढ़ कर फूल तोड़ने नहीं देता।

स्टेशन से राजा की आवाज आ रही है। इस ट्रेन के साथ माल गाड़ी के डब्बे जुड़े रहते हैं। जब इस स्टेशन का माल होता है, तब वे डब्बे यहीं कट जाते हैं वही डब्बे शंटिंग हो रहे हैं। निताई भी नियमित रूप से अन्य कुलियों के साथ ठेलता था। सहसा उसके मन के गीत को दबा कर जाग उठा जीविका का प्रश्न। अब वह कुली का काम नहीं करेगा, वह कवि है। मगर पेट कैसे भरेगा वह ?

हौले और तेज कदमों से चली जा रही है ठाकुर जी। सफेद साड़ी पहने, खेतों के क्यारी पर यहाँ से वहाँ तक लगे हुए काश फूल की तरह जो हल्की हवा के झोंके से कविता के छन्द की तरह थिरक रहे हैं, ठीक उसी तरह झूमती हुई वह चली आ रही है। उसके सर पर चमकती हुआ गागर ऐसी प्रतीत होती है जैसे शुभ्र हिमकिरटनी के मस्तिष्क पर स्वर्ण मुकुट शोभित हो।

ठाकुर जी की बोली जितनी पैनी है, चलती भी है वह उसी प्रकार पग पग पर ढुलकती हुई, सरस कच्चे बाँस की तरह लच लच लचकाती शरीर को। उसकी यह भंगिमा निताई को बहुत भाती है और उसे जो कुछ अच्छा लगता है वह है उसका घन श्यामल कोमल तन! ठाकुर जी आज बहुत तेज कदमों से चल रही हैं। निताई मन ही मन जरा हँसा—उसे देखकर ही शायद ठाकुर जी इस प्रकार चल रही हैं। अगर उसमें शक्ति होती तो आज उसकी चाल से धरती डोल उठती! मगर राजन को भी तो इतनी कड़ी बात नहीं कहनी चाहिये। कोलतार की तरह काली होने पर भी ठाकुर जी बुरी नहीं लगती। बुरी क्यों बल्कि अच्छी लगती है, काले रंग से क्या आता जाता है।

'है खराब गर काला, तो केश पके पर हो रोते क्यों ?'

निताई ने पुकारा—'ठाकुर जी, ओ ठाकुर जी !'

ठाकुर जी ने परवाह नहीं की, वह अपनी चाल में चली गयी।

'तुम्हें मेरी कसम !' निताई ने कहा।

ठाकुर जी ठुमक कर जहाँ की तहाँ खड़ी हो गयी।

मीठे-कड़े स्वर में उस छोकरी ने कहा—'मुझे देर हो रही है।'

'एक बात सुनो, यहाँ आओ।'

'नहीं, वहीं से बोलो।'

'तुम्हें मेरी कसम।'

झमकती हुई ठाकुर जी अब जरा आगे बढ़ी—निताई की ओर— 'तुम्हारी कसम अगर नहीं मानूँ तब ?'

'तब, दिल को चोट पहुँचेगी गहरी चोट !' जैसे निताई ने छलना की, लेकिन जो कुछ उसने कहा वह बिल्कुल हृदय से ही।

आशा से अधिक शान्त स्वर में उस छोकरी ने कहा—'लो क्या कहते हो, बोलो।'

उसके मुँह की ओर देखकर मृदु स्वर में निताई बोला—'नाराज हो गयी हो ?'

एक ही क्षण में सलज्ज और चकित आंखों में आँसू भर आये। मगर वह बोली—'मैं काली हूँ, तो अपने लिये हूँ, कोई तो मुझे खाने-पहनने के लिये नहीं देता।'

निताई हँस कर बोला—'लेकिन ठाकुर जी मुझे तो काला ही अच्छा लगता है।'

ठाकुर जी के काले मुँह पर की लाल आभा स्पष्ट नजर नहीं आती। फिर भी उसकी लज्जा का आभास मिलता है। निताई ने उसके इस परिवर्तन पर ध्यान नहीं दिया। वह गाल पर हाथ रख कर मधुर स्वर में गाने लगा—

'है खराब गर काला, तो केश पके पर हो रोते क्यों ?'

छुईमुई-सी लजीली ठाकुर जी अब विस्मय से श्रद्धावान्वित दृष्टि से निताई की ओर देखने लगी, बोली—'कल तुमने तो बड़ा मजेदार गीत गाया था।'

'तुम्हें अच्छा लगा ?'

'बहुत अच्छा !'

'आओ, आओ जरा-सी चाय है, पीलो।'

'नहीं, नहीं' यों ठाकुर जी चाय पीती है चाव से। लेकिन स्त्रियाँ अपनी पसन्द को जाहिर नहीं कर सकती 'छी:।'

निताई ने कसम दी—'तुम्हें मेरी कसम।'

वह अपने कमरे की ओर मुड़ा। राजन के लिये जो चाय ढँक कर रख छोड़ी थी वह चूल्हे पर चढ़ी थी। निताई ने उसे दो गिलास में डाल कर एक गिलास ठाकुर जी के आगे रख दिया। ठाकुर जी ने पुन: लजा कर कहा—'नहीं, नहीं, तुम पिओ।'

'ऐसा नहीं हो सकता। अगर तुमने चाय नहीं पी तो मैं समझूँगा कि तुम अभी भी क्रोध में हो।'

गिलास हाथ में उठाकर ठाकुर जी कहा—'क्रोध क्या है ?'

'गुस्सा ! क्रोध नहीं, क्रोध, यानी तुम्हारा गुस्सा। क में रेफ आ

कर और ध क्रोध ! हिंसा क्रोधी, अतिमन्द कभू नहीं होता अच्छा। समझो ठाकुर जी, कभी किसी से ईर्ष्या न करो न कभी क्रोध करो। क्रोध का दूसरा नाम है चण्डाला।'

एक विस्मय से छोकरी ने निताई की ओर घूर कर प्रश्न किया—'अच्छा तुमने इतना सब कैसे सीखा ?'

उत्तर में निताई आकाश की ओर दृष्टि उठा कर परम तत्व ज्ञानी की भाँति बोला—'यह भगवान की छलना है ठाकुर जी। अगर नहीं तो कवि बना कर भी उन्होंने मुझे डोम कुल में क्यों भेजा, तुम्हीं बोलो ?'

नीरव, विस्मय मूर्तिमती श्रद्धा से ठाकुर जी कवि की ओर देखती रही, उसकी आंखों के सामने साकर हो रही थी सैकड़ों श्रोताओं की विस्मित दृष्टि और निताई का मुद्रा युक्त भाव भंगिमा वाला वह रूप, जिसे उसने कल रात को कवि दरबार में देखा है।

यकायक गहरी सांस खींचकर निताई ने कहा—'सब उसकी लीला है, नहीं तो मुझे व्यंग से लोग कपिवर, यानी हनुमान कहते।'

चकित उत्तेजना में ठाकुर जी की दोनों भौंहें कुंचित हो गयी, उसने प्रश्न किया—'कौन ? कौन है वह ?'

एक और गहरी सांस फेक कर निताई ने कहा—'यह सुन कर तुम क्या करोगी, लो चाय ठंडी हो रही है, पिओ।'

ठाकुर जी मुँह फेर कर बैठ गयी, जीजा जी या निताई के सामने बैठ कर उसने आज तक कुछ नहीं खाया कैसा तो लगता है। मुँह फेर कर एक घूँट चाय पीकर उसने कहा—'नहीं, बताना पड़ेगा तुम्हें, वह कौन है, ऐसा कहने वाला ? शायद जीजा जी !'

'नहीं, नही ठाकुर जी, राजन मेरा सच्चा दोस्त है। वह बहुत अच्छा आदमी है।'

'ऊहूँ-हूँ बड़ा अच्छा है कि बोली की गोली मारते हैं। खाक अच्छा है।'

'नहीं, ऐसी बात नहीं। आज तो उसने जो कुछ कहा वह मजाक में, तुम उसकी साली होती हो न !'

'यह मजाक क्या है ?'

'दिल्लगी, तुम से तो उसका सम्बन्ध ही ऐसा है।'

ठाकुर जी चुप रही, निताई की बातें वह मन ही मन स्वीकार कर लेती है। ठाकुर जी की कोमल काली आकृति से उसकी प्रकृति का एक घनिष्ट सम्बन्ध है, संगीत और स्वर की तरह। कुछ क्षणों के बाद ही उसने कहा—"हाँ, जरा गुस्सैल मिजाज के है, मगर आदमी अच्छे हैं।'

'अच्छे ही नही बड़े अच्छे हैं।'

'लेकिन तुमको वह बात किसने कही, यह बताना पड़ेगा, वह मुँह जरा कौन है, कौन ?'

'गाली न दो ठाकुर जी, वह जात का ब्राह्मण है। वही जो बनिये मामा की दूकान पर स्वादू साधू की तरह बैठा रहता है और बक-बक करता रहता है ? अरे विप्रपद ठाकुर।'

'वह क्यों ऐसी बात कहेगा ?'

'छोड़ो भी, वह जात का ब्राह्मण है और मैं हूँ नीच जात—कह दिया तो कह दिया।'

'ओ हो-हो, बड़ा आया बामन ! तुम्हारी तरह गीत बना बना कर गाये तो जरा देखूँ।' उत्तेजना में ठाकुर जी का आंचल सर से खिसक कर कन्धे पर आ गिरा।

निताई मुग्ध कण्ठ से बोला—'अहा, हा, हा ! बड़ी अच्छी लग रही हो ठाकुर जी !'

ठाकुरजी की रूखी-सूखी वेणीमें एक लाल जवाकुसुम झूल रहा था। शर्म से वह सचकिता हिरणी की तरह तत्काल खिसक गये घूँघट के पट को सर पर सम्भालने की चेष्टा करने लगी। लेकिन निताई चूका नहीं, उसने झपट कर उसका हाथ पकड़ लिया—'देखूँ, देखूँ, वाह, वाह ठाकुर जी !'

छोकरी शर्म से अब रोई–अब रोई की अवस्था में पहुँच गयी, कुछ गुस्से और कुछ प्यार से बोली—'छोड़ो !'

निताई को होश हुआ और उसने उसका हाथ छोड़ दिया। हाथ छूटते ही ठाकुर जी पलक मारते चाय का ग्लास लेकर नमित नयन भाग गयी जूठे ग्लास को साफ करने के लिये।

निताई चुपचाप बैठा रहा कि पीछे से एक आवाज आयी। किसी चीज के रखने की आवाज। उसने मुड़ कर पीछे देखा—ठाकुर जी ग्लास रखकर अपनी गागर ले चली जा रही है। उसने उसकी ओर मुड़ कर देखा। आंखों से आंख मिलते ही ठाकुर जी की गर्दन शर्म से झुक गयी। इससे पुनः उसके सर का पल्ला गिर गया। अब ठाकुर जी बिना घूँघट सम्भाले ही भाग गयी, उसकी रूखी वेणी में सजा लाल फूल नीले आकाश में लाल तारे की तरह जाज्वल्यमान था।

उहूँ, ठाकुर जी नाराज नहीं हुई। वह मुड़ कर देख रही है, हँस रही है, अपनी वेणी में झूलते हुए लाल फूल की तरह ही।

लेकिन ठाकुर जी धीरे-धीरे दूर-दूर और दूर चली गयी जैसे टेढ़े-मेढ़े पथ ने उसे अपनी वक्रता में छिप लिया हो।

निताई बैठा-बैठा अपनी गर्दन हिलाता रहा। अब दूसरी कड़ी भी बन गयी है—

'काली वेणी में लाल फूल है ढूंढ रहा नयनों में क्या ?'

७

काली वेणी में लाल फूल की शोभा देखकर गीत की रचना कर कवि बनना आसान है। मगर उस शोभा को आँखों में संजोकर राह चलना कठिन है। निताई को एक ठोकर लगी—भयंकर ठोकर। पैर के अंगूठे का नाखून फट गया और खून बह निकला लेकिन वह अपनी कविता गुनगुनाता हुआ चण्डी स्थान को जा रहा था, सुनसानपथ—बायाँ हाथ कान पर और दाहिने हाथ से मुद्रा बनाकर वह ऊँचे स्वर में गाता हुआ चला जा रहा था। रह-रहकर वह दाहिने हाथ की अंगुली से कालीवेणी में लाल फूल की ओर इशारा भी कर देता था—जैसे ठाकुरजी अभी भी उसके आगे-आगे चली जा रही हो और उसकी सूखी काली वेणी में लाल फूल चमक रहा हो।

ठोकर लगते ही वह पैर पकड़ कर बैठ गया। एक तो इधर कई दिनों में उसका शरीर कमजोर हो गया था क्योंकि वह एक ही वक्त भोजन करता था। कमाई कुछ होती नहीं, इसलिये एक वक्त भोजन करता है, जो कुछ है, वह बहुत थोड़ा है, और थोड़ा जमा कर वह दूकान खोल लेगा, एक वक्त ही किसी दिन वह खिचड़ी बना लेता है या किसी दिन खीर! यह बात उसने राजा को भी नहीं बतायी है। राजा अगर सुन लेता तो कुछ रुपये उसके सामने रख कर कहता—खाओ पिओ और कविता करो, घटने पर साहब देगा। राजा की तरह दोस्त चिराग लेकर ढूँढने पर भी नहीं मिल सकता। राजा नाम से ही नहीं मन का भी राजा है। विप्रपद ने जितने नाम उसे दिये हैं, उससे निताई को कष्ट पहुंचता है। सिर्फ एक नाम छोड़ कर; वह नाम है राजा के दरबार का कवि। राजा से उसे कोई संकोच नहीं है। लेकिन राजा की बहू रानी नहीं, राक्षसी है। वाह रे, उसकी जबान

जैसे जहर से बुझी है। राजा उसे इतना पीटता है कि पीठ पर नीले निशान उभर आते हैं फिर भी वह अपनी जबान ठीक नहीं करती। वह सोई-सोई रोती है और अनवरत गाली देती रहती है—हृदय वेधने वाली, अश्लील गालियाँ। उसका क्रोध संसार के ऊपर है, कभी-कभी आने वाली ट्रेन को भी शाप देती है। ट्रेन के समय राजा ड्यूटी देता है और जब कभी इसी अवसर पर उसे राजा की आवश्यकता पड़ती है और वह नहीं मिलता, तब वह स्टेशन मास्टर से लेकर गार्ड, ट्रेन सभी को गालियाँ देती है। निताई को हँसी आती है। राजा की बहू की गालियों की बन्दीश बड़ी मजेदार होती हैं। कल ही लोकल ट्रेन को गालियाँ दे रही थी—पुल टूट जाये, जिस आग की तेजी में अकड़ कर चल रही है—उसी आग में झुलस जा। राजा फुर्सत पाते ही निताई के पास आ बैठता है। इसलिये निताई से वह बहुत नाराज रहती है। राजा की अनुपस्थिति में वह निताई को सुना-सुनाकर, किसी अनजाने व्यक्ति का नाम ले-लेकर गालियाँ देती है। वह हँसता है। राजा से आर्थिक मदद नहीं लेना ही ठीक है। एक न एक दिन रानी को खबर लग जायेगी, तब बड़ा बावेला मच जायेगा। कल ही की तो बात है, ठाकुरजी को चाय पीते रानी ने देख लिया है और यह भी वह जानती है कि निताई के साथ बैठी देर तक खिल-खिल हँसती रही है। उस समय राजा की बहू कहीं जा रही थी, हँसी की ध्वनि ने उसका ध्यान खींच लिया था और उसने झांक कर देख लिया था तथा फौरन आँख चुराकर चली गयी थी। ठाकुरजी तो जैसे सूख गयी थी, निताई भी सन्न रह गया था। दूसरे क्षण ही राजा की बहू बाहर गारही थी :—

'हँस नहीं री हँस नहीं, तजके लाज लिहाज'

ठकुरजी से चाय पी नहीं गयी, एक लोटा ठंडा पानी पीने के बाद वह कहीं अपने घर जा सकी थी।

किसी प्रकार पैर सहलाता हुआ निताई चन्डी स्थान पर पहुंचा और महंत के आगे हाथ जोड़कर खड़ा हो गया।

महंत ने सस्नेह कहा—'आओ कवि निताई, आओ।'

निताई कृतार्थ हो गया। उसने महंथ को प्रणाम किया —

'मंगल हो, क्या समाचार है ?'

'भगवन, मुझे मिडल देने को आपने कहा था।'

'मिडल !'

'जी हाँ'

'ठीक है, वह मिल जायेगा।' महंत उदास हो गये और साथ ही साथ चण्डी माता की महिमा का बखानकर वे पुकार उठे 'काली कल्याणी माँ।'

निताई चुपचाप कुछ क्षण तक बैठा रहा। भावना प्रवण भक्त महंत को छेड़ने की हिम्मत नहीं की—कुछ देर बाद, उधर चबूतरे पर एक शब्द हुआ—ढंग।

महंतजी का ध्यान भंग हुआ। चण्डी माता के दर्शनार्थ यात्री आये हैं, रुपया या पैसा कुछ फेंका गया है।

महंत के लौट आने पर निताई ने करबद्ध प्रार्थना की 'महाराज !'

भौंहें तानकर महंत जी ने कहा—'कह दिया न कि मिल जायेगा, अब की मेले में। सभी के सामने मिडल दिया जायेगा।'

निताई विनम्र होकर बोला—'जी कुछ विदाई नहीं देंगे ?'

'विदाई, यानी रुपये ?'

'जी, हाँ'

महंत कुछ क्षण तक निताई की ओर देखते रहे। महंत के इस प्रकार घूरने से निताई को शंका होने लगी। महंतजी अकस्मात बोले—

'वाह-वाह, चलो तुम्हें ज्ञान तो आया।' फिर वे भौंहों को टेढ़ी कर बोले—'रुपये ! माँ चण्डिके से रुपया मांगता है। अरे मूर्ख अपने को पहचानने का तुझे अवसर मिला यह क्या कम है ?'

महंतजी की वाणी जैसे तलवार की धार की तरह लगी, इस आघात से निताई चौंक उठा। शर्म से वह गड़ गया। सचमुच दरबार में

उसे गाने का अवसर मिला, यही क्या कम है। वह रुपया किस हमुँ से मांगता है।

इसके बाद बिना कुछ कहे सुने वह एक प्रकार से भाग आया। लौटते समय उसकी आँखों में पानी भर आया था। उसे याद आया—उस दिन दरबार में महादेव ने कहा था 'डोम को आयी सुबुद्धि फक कटारी अपनी ही टांग में उसने मारी।' हाँ बात ठीक है, मैंने अपनी टांग पर ही कुल्हाड़ी मारली है। महादेव जैसा भी हो लेकिन वह पक्का आदमी है, उसने ठीक ही कहा था। कवि होने की उसकी आकांक्षा बौना होकर चाँद छूने का प्रयास ही नहीं तो और क्या है?'

अचानक वह अपने आप ही स्फुट स्वर में बुदबुदाने लगा 'व्यर्थ है, सब कुछ बेकार'—यानी उसके कवि होने की लालसा एक विडम्बना है। वह आज से ही बारह बजे की ट्रेन से बोझा ढोने का काम शुरू कर देगा। लेकिन विप्रपद मजाक उड़ायेगा, उड़ाओ। कवि बनने की उसे जरूरत नहीं। मन को साफ कर वह उमंग में कविता गुनगुनाने लगा महादेव की रची कविता।

'डोम को आयी सुबुद्धि फेंक कटारी।
अपनी टांग में उसने मारी.......'

मुश्किल से वह अभी चार कदम बढ़ा होगा कि उसके कानों में एक शब्द गूँजा-गाड़ी आ रही है, नहीं? तो आती होगी। राजा अब तक स्टेशन पर पहुंच चुका है। वह सिगनल देगा और ट्रेन आने की सूचना के उद्देश्य से घंटा बजायेगा। ठाकुरजी सम्भवत: किंकर्त्तव्य विमूढ़-सी खड़ी होगी—उसके बन्द दरवाजे पर। वह आज राजा के घर कदापि नहीं जायेगी। कल राजा की बहू ने उसकी जो गति बनादी है.......। निताई ने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई—कोई कहीं नहीं था। वह चलने लगा।

हाँपता हुआ वह स्टेशन पर जब आया उस समय ट्रेन मन्द गति में रेंगती हुई प्लेटफार्म छोड़ रही थी। निताई वहाँ निराश होकर खड़ा

हो गया। ठाकुरजी चली गयी है।

स्टेशन पर उसे खड़ा देखकर बनिये मामा ने अपनी दूकान पर से ही उत्सुकता पूर्वक उसे पुकारा—'निताई, निताई !'

वायु रोग से पीड़ित विप्रपद ने बड़ी मुश्किल से अपने शरीर को मोड़कर कहा—'कवि महाराज, ओ कपिवर।'

निताई झुँझला उठा। उसे आज कुछ बुरा-भला कहने के ख्याल से ही वह दूकान के सामने आ खड़ा हुआ। लेकिन बनिये मामा ने खुश होकर कहा—'जो कुछ भी कहो निताई सचमुच में गुनी आदमी है। महादेव ने तुम्हें बुलाया है, उसका आदमी आया था। कहीं का बयाना है।'

इस अप्रत्याशित समाचार से वह ठक रह गया—खुशी से उसका मन बांसों उछल रहा था।

मशहूर कवि महादेव ने उसे बुलाने के लिये आदमी भेजा ? बयाना आया है ! उसका यह विस्मय विमूढ़ भाव तब भंग हुआ जब उसे राजाने पुकारा आनंद विभोर होकर राजा चिल्ला रहा था—

'उस्ताद, अरे उस्ताद !'

राजा के साथ कोई और है। महादेव के दल का एक शागिद। इस मेले में भी तो वह था। निताई ने उसे पहचान लिया।

'बयाना, उस्ताद बयाना आया है।' राजा की खुशी का ठिकाना नहीं।

उस आदमी ने कहा—'अच्छे हैं आप ?'

इतनी देर बाद निताई ने कृतज्ञता पूर्वक कहा—'जी हाँ ! आप लोगों की दया ? उस्ताद मजे में हैं न ?'

'जी उन्होंने ही तो आपके पास हमें भेजा है। एक बयाना आया है, आपको हम लोगों के साथ चलना होगा।'

निताई की अवस्था भी राजा की तरह होगयी। आज वह जो कुछ सोच रहा है सब कुछ में एक तत्परता मिल रही है। महादेव उस्ताद

ने उसे बुलाने के लिये उसके पास आदमी भेजा है !—बयाना आया है। उसने भी कहा—'आइये चाय पियें और बातें करें ।'

अपने दरवाजे पर पहुंचते ही वह आश्चर्य चकित हो उठा, उस कदम्ब वृक्ष की छाया में वह कौन बैठी है ?

ठाकुरजी !

उत्सुक और उच्छ्वासित दृष्टि से ठाकुरजी की लज्जा ने ताका झांका । लेकिन उसी क्षण वह अपने को छिपाती हुई बड़े मजे में बोली—'कहाँ गये थे तुम देखो तो भला मैं दूध लेकर तब से यहाँ बैठी हूँ !'

निताई ने कहा—'कल जरा जल्दी दूध लाना । कल बारह बजे मैं एक दरबार में जाऊँगा । इसके पहले ही—'

राजा ने उसके वाक्य को छोटा बनाया—'हाँ, हाँ, ठीक वक्त पर वह आयेगी ! घड़ी की सुई की तरह है हमारी ठाकुर जी !'

ठाकुर जी ने निताई की ओर देखा । उसके होठों में प्रशंसा योग्य हँसी की रेखा खिची थी ।

दरबार से निताई लौटा पांच दिनों के बाद । वह ट्रेन से स्टेशन पर उतरा । उसके पैर में कन्वेस का सफेद जूता है शरीर पर गन्दा कुरता और कन्धे पर धुनी हुई सफेद चादर । होठों में मृन्दु मन्द हँसी—लेकिन विनम्रता से से वह धरती चूम रहा था । रास्ते भर वह सोचता आया है कि स्टेशन मास्टर और''''और सभी उसे देखकर आश्चर्य में डूब जायेंगे, अवश्य, श्रद्धा से वे सब उससे बातें करेंगे :

'अरे, निताई ! ओ हो, यह जूता, यह चादर ! तुम तो पहचान में नहीं आते ।'

इसका उतर निताई ने सोच लिया था ।

'जी हां, यह चादर वहां के बाबू ने इनाम में दी है, और यह जूता जूता तो मैंने खरीदा है।'

इनाम मिलने की बात झूठी है जरूर! जूता और चादर दोनों ही वस्तुओं को उसने नगद मूल्य में खरीदा है। बिना गेरू वस्त्र के धारण किये कोई सन्यासी नहीं मानता। बिना भेष के भीख नहीं मिलती और बिना चादर के वह कवि नहीं जान पड़ता था। नंगे पैर वालों की श्रेणी में आदमी सहज में आना नहीं चाहता। इसीलिये उसने जूते और चादर खरीदे।

प्लेट फार्म पर खड़े होकर एक प्रत्याशित ढंग से अर्थात् विनयपूर्वक लेकिन आत्म सम्मान पूर्ण ढंग से हँसते हुए सभी की ओर वह देखने लगा। लेकिन उसकी ओर देख कर भी किसी ने उसे नहीं देखा, बात चीत करना तो दूर की बात है किसी ने उससे कुछ पूछा तक नहीं, जिसके पूछने की उम्मीद थी, वह तो अभी इंजिन के पास खड़ा है, अपने काम में व्यस्त है। मालगाड़ी शंटिंग में जायेगी। डब्बे काट कर राजा इंजिन पर खड़ा हो गया था और चिल्ला रहा था—हट जाओ, अबे ऐ गदहे, हटो-हटो।

निताई का मन उदास हो गया। जिस प्रकार मनुष्य वैरागी होने पर संसार के पथ से अलग पथ बनाता हुआ सभी की दृष्टि से ओझल हो जाता है, उसी प्रकार वह स्टेशन के किनारे-किनारे लगे मेंहदी के बेड़े को पार करता हुआ आ गया अपने कमरे के दरवाजे पर। उसे आज मन की उदासी के साथ-साथ थकावट भी महसूस हुई।

'है खराब गर काला तो केश पके पर रोते हो क्यों ?'—अचानक उसके कानों में यह पंक्ति गूंज उठी। वह अपने चारों ओर आश्चर्य से देखने लगा—कौन ? कौन गा रहा है ? उसकी रची कविता ? उसी झाड़ी में छिप कर, कदम्ब के गांछ के नीचे बैठकर। क्षण भर में ही सूखी हुई नदी में जैसे वेगवती लहर झूमती हुई आयी। उसी का बनाया हुआ गीत ठाकुर जी गा रही है। उस झाड़ में छिपकर। रबर सोल के

कन्वेस के जूते वाले पैरों को दाब कर निताई उसके पीछे जा खड़ा हुआ और दूसरी पंक्ति गुनगुनाने लगा—काली वेणी में लाल फूल, है ढूँढ़ रहा नयनों में क्या ?'

ठाकुर जी चौंकी, सजग हरिणी की तरह–'अरे बाप रे, कौन है ?'

दूसरे ही क्षण वह मौन और धक् सी रह गयी।

निताई का मन खिल उठा। उसके चेहरे पर हँसी दौड़ पड़ी। उसने बड़े प्यार से अपनी रचना को दुलारने वाली ठाकुर जी से कहा—'आओ, चाय पीनी पड़ेगी, जरा-सी।'

निताई चादर कन्धे से उठाकर रखने चला तब उसे रोक कर ठाकुर जी ने कहा—'अरे, अरे ! उतारो नहीं चादर। जरा अच्छी तरह तुम्हें देख तो लूँ।'

अच्छी तरह ठाकुर जी ने देखा, फिर बोली—'वाह, बड़े चोखे-अनोखे बन गये हो, यह ठाट बाट। ठीक कवि, कवि मालूम पड़ रहे हो तुम तो।'

निताई बोला—'यह चादर इनाम में मिली है !'

'और मिडिल ? मिडिल नहीं मिली ?'

'वह, अगले साल देंगे। मिडिल तो बाजार में बनी बनाई नहीं मिलती न ?'

'खैर, चादर भी बुरी नहीं है। तुमने खूब गीत गाया होगा न ?'

'खूब गाया, 'काला अगर है खराब तो—'यह गीत भी गाया ठाकुर जी !'

उस काली छोकरी का मुँह जाने कैसा हो उठा। उसकी आंखों की पलकें भारी हो उठीं। आंखों को धरती से गड़ा कर वह बोली—'धत् ! कितने खराब आदमी हो तुम !'

निताई ने हंस कर उत्तर दिया—'अरे हाँ, मैं तो बिल्कुल भूल ही गया।'

'क्या ?'

'आँखें बन्द करो तो। और जब मैं कहूं खोलो, तब खोलना,'

'नहीं !'

'हां, बन्द करो, इसके बाद तुम सब कुछ देख लोगी।'

ठाकुर जी आंखें तो बन्द कर लीं। मगर देख रही थी—निताई अपने जेब में हाथ डाल रहा है।

'अरे, तुम देख रही हो।' ठाकुर जी की चालाकी पकड़ी गयी 'बंद करो अपनी आँखें, अच्छी तरह से।'

और जैसे ही ठाकुर जी ने आँखें बन्द कीं कि उसे अनुभव हुआ जैसे उसके गले में कोई चीज डाल दी गयी हो। यह क्या? चकित होकर ठाकुर जी ने आखें खोल दीं—देखा उसके गले में है—सोने की तरह चमकती हुई पतली-पतली सूत की मोटी-सी माला! लज्जा से छुई-मुई हो गयी ठाकुर जी की ही तरह गले में झूलती हुई माला!

वह विस्मय और आनन्द में इतनी विभोर हो उठी कि बहुत कुछ कहने के लिये तत्पर होकर भी कुछ न बोल सकी।

'यह सोने की है?'

'नहीं, कैमिकल की है!'

सोने का न सही। इससे ठाकुर जी की खुशी कम न हुई। उसका हृदय धड़क रहा था—वसन्त की हवा में जिस प्रकार डालियों पर कोमल पत्ते थिरकते हैं, वैसे ही।

'उस्ताद, उस्ताद!'

राजा आ रहा है। गाड़ी चली गयी है। काम खत्म कर राजा प्लेट फार्म से ही चिल्लाता हुआ चला आ रहा है।

ठाकुर जी चौंक उठी, साथ ही आज निताई भी स्तम्भित रह गया। झटपट ठाकुर जी ने गले की माला निकाल कर फेंक दी और सशंकित स्वर में गला दबाकर बोली—'जीजा जी आ रहे हैं।'

निताई भी जैसे किंकर्तव्य विमूढ़ हो गया—'तब?'

और वह कमरे से बाहर आ गया। अभी भी उसके कन्धे पर चादर

श्रौर पैर में जूते थे। दो कदम श्रागे बढ़कर उसने राजा को विनय भाव से नमस्कार किया श्रौर बोला—'राजन, श्रौर सब कुशल है न ?'

राजा की श्राँखें श्रानन्द से विस्फारित हो गयीं—'श्ररे बाप रे बाप ! कन्धे पर चादर—।'

उसे बीच में ही रोक कर निताई ने कहा—'इनाम।'

'श्रच्छा, बाबू लोग गीत सुन कर खुश हुए तभी न इनाम दिया।'

'हाँ !'

'हाँ !!'

'श्ररे, बाप रे बाप !' राजा ने निताई को छाती से लगा लिया। इसके बाद बोला—'चलो भाई कवि जी, चलो।'

'कहां ?'

'श्ररे, श्राश्रो भी !' वह उसका हाथ पकड़ कर खींचते हुये ले चला बनिये मामा की चाय की दूकान पर।

'मामा ! चाय बनाश्रो—मिठाई ले श्राश्रो।

मामा भी श्रवाक हो गया—निताई के ठाट देख कर। वात रोग से पंगु विप्रपद उधर मुँह फेरे बैठा था। उसने भी कष्ट के साथ श्रपने शरीर को मोड़ कर देखा। उसे भी बड़ा श्राश्चर्य हुश्रा।

श्राज बहुत दिनों के बाद निताई ने विप्रपद को पैर छू कर प्रणाम किया। इसके बाद हँस कर बोला—'चादर इनाम में मिली है भगवन।'

बनिये मामा ने कहा—'लेकिन हम लोगों को मिठाई खिलानी पड़ेगी निताई।'

'जरूर खाश्रो, खाश्रो न मामा ! मिठाई तो तुम्हारी दूकान में ही है। दाम मैं दूंगा।'

'नहीं हम देगा दाम।' राजा एक श्रोर पड़े लकड़ी के एक बक्स को खींच कर उस पर बैठ गया श्रौर निताई का हाथ पकड़ कर उसे भी श्रपनी बगल में बैठाते हुए बोला—'बैठ जाश्रो।'

इतनी देर बाद विप्रपद ने मुँह खोला, मगर श्रौर दिनों की तरह

ताना नहीं दिया, सहानुभूति पूर्ण प्रशंसा की बातें कहीं—'अच्छा निताई कैसा जमा गीत वहाँ !'

निताई का उत्साह कई गुना बढ़ गया—उसने आज विप्रपद को जीत लिया है। इससे बढ़ कर उसके लिये और क्या हो सकता है। पुनः उसने विप्रपद के पैर छुए और हाथ जोड़ कर कहा—'भगवन् खूब जमा दोनों तरफ दो तगड़े कवि थे—वह कहता मुझे देखो, यह कहता मुझे देखो।'

मामा ने पत्ते के दोने में मिठाई सजाकर उन लोगों के हाथ में दी मगर निताई के सामने हाथ में लिये वह खड़ा रहा क्योंकि निताई को इतनी फुर्सत नहीं थी। बात-चीत के साथ-साथ उसके दोनों हाथ भी चल रहे थे।

विप्रपद इतनी देर में बहुत सरल हो गया है। वह झटपट मामा के हाथ से मिठाई का दोना लेकर बिगड़ उठा—'चल हट, नीरस आदमी! किसी जमाने में कवि ने मिठाई खायी है? कवि तो चांद की छटा खाता है, फूल के रस का स्वाद लेता है और कोकिला का कण्ठ स्वर पीता है।' इसके बाद निताई को सम्बोधन कर उसने कहा—'हाँ फिर निताई एक ओर था सृष्टिधर और दूसरी ओर महादेव। सेर पर सवा सेर। आगे?'

निताई के उत्साह में मामा के इस व्यवहार से कोई फर्क नहीं पड़ा। वह अपने जोश में ही कहता रहा—'एक दिन, समझे भगवन, महादेव का रंग कुछ ज्यादा चढ़ गया था। उस दिन महादेव कृष्ण हो गया और सृष्टिधर राधा बन गया। सृष्टि धर ने टेक लिया—काले कोयले में लग गयी आग—देखो भाई, कुएं में पड़ गयी भाँग। वह गाली देने पर उतर आया। उस समय महादेव कै कर रहा था। शागिर्द उसके सर पर पानी डाल रहे थे। मुझे अवसर मिला और मैंने अपना टेक जोड़ दिया—'काला अगर है खराब, तो केश पके पर हो रोते क्यों?'—बस, फिर कहना क्या था कि बाबू भइयों में 'वाह वाह' का शोर मचा और साथ-

ही साथ इनाम में मिली यह चादर।'

कुछ बातें सच हैं। निताई ने टेक दिया था और लोगों ने उसकी प्रशंसा भी की थी मगर यह इनाम मिलने की बात झूठ है।

इतनी देर तक वह भूला था मगर चाय पीते पीते इनाम प्राप्ति की गर्वोन्वित से भर कर उसे याद पड़ी ठाकुर जी। वह क्या अभी भी कमरे में बैठी है? निताई चाय का प्याला हाथ में लिये हुए ही प्लेट फार्म पर आ गया। समकोण तीक्ष्ण चमकती हुई रेल की पटरियाँ, दूर तक चली गयी हैं और आँखों के परे जाकर वे एक में मिल गयी हैं, वहीं उसने दृष्टि गड़ा दी—कहाँ, कहाँ वह स्वर्ण बिन्दु सर पर लिये काश फूल तो उसे नजर नहीं आ रही है!

राजा दुकान पर बैठा पुकार रहा था—'उस्ताद, उस्ताद!'

'हां, आया, आया। घर से लौट कर आता हूँ जरा।'

निताई तेजी के साथ अपने कमरे में आ चुका। हाँ, अभी भी वह बैठी है। बिना कुछ बोले-चाले वह उससे कतरा कर निकल जाना चाहती थी, निताई ने उसकी कलाई पकड़ कर कहा—'तुम नाराज हो गयीं!,

उसकी आँखें डबडबा आयीं।

'क्या करूँ तुम्हीं बोलो? वे लोग पकड़ कर छोड़ना ही नहीं चाहते—'

'हां, मैं बैठी रही और तुम उन लोगों से गप्पें मारते रह!'

'मुझे माफ कर दो, मैं हाथ जोड़ता हूं।'

अब एक ही क्षण में ठाकुर जी हंसने लगी।

'बैठो, जरा चाय पिओ। तुम्हारे लिये नया प्याला लाया हूँ—यह देखो।'

उसने अपनी जेब से एक नया प्याला निकाला। पुनः कहा—'मैं तो भूल ही गया था।'

निताई हँसा।

'नहीं, बहुत देर—' इतना कह कर ही वह फैली हुई सफेदी की ओर देख कर सिहर उठी—'अरे बाप रे बाप!' और वह तेज कदमों से अपने घर की ओर चल पड़ी।

भर रास्ते वह सोच रही थी कि कितनी बातें उसे सुननी पड़ेंगी, उसका वह क्या जवाब देगी। चलते हुए उसने अपने आँचल की खूँट से माला निकालकर गले में डाल ली।

रास्ते में एक छोटी नदी इठलाती हुई निकल गयी है। उसकी निर्मल धारा में, ठाकुरजी ढूँढ़ती है अपना प्रतिबिम्ब, उसके गले में सोने की तरह झकझक कर रही है माला। वह अपनी छाया आप देखकर गम्भीर हो गयी, धीरे-धीरे चंचल धार धीर गम्भीर हुई। उसने एक बार अच्छी तरह अपने को देखा—जी भर कर। पुनः माला गले से निकाल कर पूर्ववत आँचल में बाँध ली और नदी पार कर वह गाँव में घुसी।

वह क्या उत्तर देगी यह अभी तक सोच नहीं पायी है—इसलिये वह यह ठान बैठी—बोले, जो जी में आये बोलें! वह कान बहरा कर लेगी और मुँह पर अँगुली रख लेगी।

निताई अभी भी खड़ा है उसी कदम्ब के वृक्ष की छाया में। फागुन की झंकार दोपहरिया में धूल उड़ रही है, हवा मतवाली हो गयी है, इसी मतवाली बयार में धूल की चादर फर-फर करती उड़ जाती है—नदी के प्रवाह की भाँति। निताई का मन भी चंचल हो उठा हैं। वह इस रहस्यमय चादर में अभी भी वही स्वर्ण बिन्दु सर पर शोभित काश फूल को देख रहा है। वह आकाश पर दृष्टि गड़ाये गुनगुना रहा है। उसके मन में एक प्रश्न उठा—यह ठाकुरजी उसकी कौन है? मन ने उत्तर दिया—है कौन, 'मन की रानी।' मन की रानी के लिये ही वह राह पर खड़ा रहता है। उसकी इच्छा है कि वह ठाकुरजी की राह

पर ही अपनी कुटिया बना ले। इसी भावना को उसने स्वर में सँजोया और गुनगुनाने लगा—'अरी ओ मन की रानी तेरे खातिर मैंने बसाया—राह किनारे अपना घर।'

वह अपने उसी घर की ड्योढ़ी पर बैठा देखता रहेगा हमेशा ठाकुर जी के सर पर आँखों को चमका देने वाली गगरी की झलक!

८

●●●

राह किनारे घर तो वह बसा नहीं पाया मगर अपने क्वाटर में इसी प्रकार दिवा-स्वप्न देखता। गीत गाने पर उसे रुपये मिले हैं। अब किस बात की चिन्ता है। गाड़ी भाड़ा सहित उसे मिला था ६ रुपये। और गाड़ी भाड़ा उसे नहीं देना पड़ता है। इस छोटी लाइन में निताई बहुत दिनों से कुली का काम कर रहा है। गार्ड, ड्राइवर, चेकर सभी उसे जानते-पहचानते हैं। इसलिये गाड़ी का किराया उसे नहीं देना पड़ता है। छै के छै रुपये ही बच गये थे। चौदह आने के जूते, चादर बारह आने की दियासलाई और बीड़ी यही दो आने की—इस एक रुपये बारह आने के बाद चार रुपये चार आना अंटी में दबा कर वह लौटा है। उसे आशा है कि अभी और दो-एक बयाना उसे मिलेगा। निताई की यह धारणा है कि जिस जिसने उसकी कविता सुनी है, उनके द्वारा उसका नाम चारों ओर फैल रहा है।

'एक नया लड़का महादेव के दल में शागिद हुआ है, देखा है तुमने ?'

'हाँ, बहुत अच्छा है, गला बहुत मीठा है।'

'केवल गला ही मीठा नहीं है बन्दिश भी अच्छी करता है। इस बार तो महादेव की इज्जत की रक्षा उसी ने की। महादेव तो पीकर

बेहोश था। उसी ने टेक दिया 'काला अगर है खराब तो बूढ़े होकर हैं रोते क्यों ?' इसीसे तो दरबार बिल्कुल गरम हो उठा था। जवाब दो इसका। काला अगर खराब है तो काले बालों पर इतना गर्व क्यों ? इतना लुभावना क्यों है ?'

'क्या कहते हो, उसी लड़के की यह बन्दिश है ?'

'जी हाँ,'

'तो अपने मेले में भी उसी लड़के को लाना चाहिये।'

निताई मन-ही-मन अपना भाव भी ठीक कर लेता है। महादेव आठ रुपये लेता है, सृष्टि धर दस रुपये, और निताई पाँच रुपये बोलेगा और चार में राजी हो जायेगा। एक ढोलकिया चाहिये। राजन का लड़का झांझ मजे में बजा लेगा। अब की बार उसने और भी अच्छी बन्दिश की है।—'ओ मेरे मन की रानी—, इसी से तो मान हो जायेगा, एक बार सुअवसर तो मिले। यही तो मुश्किल है। फिर भी वह निराश नहीं होता है। इसीलिये वह घंटा बजते ही स्टेशन पर आ बैठता है। गाड़ी के सभी यात्रियों को वह देखता है, उन लोगों को जो मेला ठेला में दिलचस्पी लेते हैं, उनके चेहरे पर एक खास तरह की छाप लगी है। निताई उसी छाप को ढूँढ़ता रहता है। सिर्फ वह बारह बजे आने वाली गाड़ी के समय नहीं जाता। उसी समय तो ठाकुर जी आती है।

एक महीने के बाद।

अब उसके पास बच गयी सिर्फ एक चवन्नी। उसका दिल टूट गया। किसी तरह से और चार दिन कट जायेंगे। इसके बाद ? क्या फिर उसे बोझ ढोना पड़ेगा ? भूखे पेट आदमी कितने दिनों तक जीवित रहेगा ? इधर ठाकुरजी का दूध का कर्ज भी बढ़ता जा रहा है। दस दिन पहले तो उसने सब चुका दिया है। लेकिन इधर दस दिन के दस पाव दूध का दस पैसा फिर कर्ज हो गया है। निताई ने यह तय किया, आज ही वह दूध बन्द कर देगा।

दूसरे दिन दोपहर को आड़ी टेढ़ी रेल की पटरियाँ जहाँ एक में मिल गयीं हैं, वहाँ मन को लगाये वह खड़ा रहा। वही एक समय दीख पड़ी—सर पर गागर, सफेद धुली हुई साड़ी पहने ठाकुरजी।

ठाकुर जी को देखकर निताई हँस पड़ा।

ठाकुर जी ने कहा—'उहूँ, तुम ऐसे मत खड़े रहा करो। लोग क्या कहेंगे देखकर!'

एक गहरी साँस खींचकर निताई ने कहा—'तुम से एक बात कहने के लिये खड़ा हूँ।'

निताई शुद्ध भाषा में बात करने की चेष्टा करने लगा। ठाकुर जी को उसकी बोली बड़ी भाती है।

निताई की बातें सुनकर ठाकुर जी अपनी आंखों में प्रश्न संजो कर उसकी ओर देखती रही—'क्या, क्या बात हो सकती है?' अकारण उस छोकरी के हृदय की धड़कन पल भर में ही तेज और तेज हो गयी।

निताई ने कहा—'बहुत दिनों से सोचे बैठा हूं लेकिन जुबान पर आकर, जाने क्यों, रुक जाती है।'

क्षण भर को चुप रहकर निताई ने पुनः कहा—'हाँ, अब मुझे दूध नहीं चाहिये।'

ठाकुर जी 'कैसी कैसी' हो उठीं। उसके चेहरे पर का सलज्ज भाव बदल गया। वर्षा के रस से परिपुष्ट लता-पात्र की नाईं, और दूसरे ही क्षण उसका मुँह सूख गया—जैसे कड़ी धूप में सूखे पत्ते की तरह—पीला-पीला हो गया।

ठाकुर जी मौन होकर केवल निताई के मुँह की ओर देखती रही—निर्निमेष दृष्टि से। निताई के कहने के साथ ही साथ जो उसका चेहरा पीला पड़ा सो अभी तक रंग नहीं बदला। बहुत देर बाद वह बोली—निताई की बात जैसे उसने पुष्टि कर ली—'दूध नहीं लोगे?'

'नहीं'

'क्यों ? मैंने कौन सा कसूर किया ?' उसकी दोनों आँखों में आँसू भर आये ।

निताई भी कुछ क्षण तक चुप रहा । पुन: बोला—'झूठ बोलना पाप तो है ही, और तुमसे ? दूध पीने का मेरा सामर्थ्य नहीं है ठाकुर जी ! गरीब और फिर छोटी जाति के लिये कवि होना बहुत मुश्किल है, ठाकुर जी ।'

अनुनय, विनय और व्यग्रता के साथ उसने कहा—'तुम्हें पैसे की चिन्ता है, न करो इसकी चिन्ता ।'

बिना किसी विचार के व्यग्रता में ठाकुर जी ने निताई के दोनों हाथों को कसकर पकड़ लिया—जैसे वह बार-बार कह रही हो—नहीं नहीं दूध न छोड़ो ।

निताई उसे निहारकर कुछ क्षण मौन रहा, इसके बाद बोला—'नही अगर जान गया तुम्हारी पति तो वह तुम से नाराज हो जायेगा, तुम्हारी सास तुम्हारा अपमान करेगी और ननद कोसगी ।'

ठाकुर जी ने विरोध किया—'नहीं, नहीं, नहीं । एक गाय मेरी अपनी है, उसी गाय का दूध मैं तुम्हें पिलाऊँगी ।'

निताई चुप रहा ।

'लोगे न ? कवि—?' उसके स्वर में कम्पन था, निताई ने तिर्छी निगाहों से उसे देखा—ठाकुर जी की आँखों में आँसू छल-छला आये हैं ।

निताई सान्त्वना देने के लिये ही मुस्का उठा । साथ ही साथ ठाकुर जी के होंठ भी मुस्कराहट की पतली-सी रेखा से रक्ताभ हो उठे । निताई की मुस्कराहट को उसने उसकी सम्मत्ति मान ली और सुलकित होकर तेज और हौले कदमों से निताई के सामने से घर के दरवाजे पर जा पहुंची और दरवाजा खोल दिया । घरके अन्दर से दूध का बर्तन निकालकर उसमें दूध रख कर घर से निकल आयी, अपने गाँव की ओर चल पड़ी ।

निताई ने उसे पुकारा—'ठाकुर जी !'

ठाकुर जी को जैसे सुनने का अवसर नहीं था, जाने उसके सर पर कितना काम है ! उसके कदम और भी तेज हो गये और वह चली गयी ।

उस समय वह चली गयी लेकिन लौटते वक्त वह आयी और चौखट के बाहर ही बैठ कर अपने पैरों को हिलाती हुई वह बोली—'दो, थोड़ी चाय, मेरे नये प्याले में देना ।'

चाय का प्याला उसकी ओर बढ़ा कर निताई ने कहा—'एक बात तुम्हें सुनाऊँ ठाकुर जी ?'

'सुनाओ' ठाकुर जी ने प्याले को होठों से चूमते हुए कहा—

'मुझे बिना पैसा लिये तुम दूध क्यों दोगी ?'

ठाकुर जी स्थिर दृष्टि से उसकी ओर देखती रही ।

निताई ने पुनः कहा—'आखिर क्यों ?'

'मेरी इच्छा ?'

तुम्हारी इच्छा ।'

'हाँ, मेरी इच्छा !' वह हँसती हुई बोली—'तुम कवि हो न ! बड़े आदमी !' और वह अपने चाय के प्याले को धोने के लिये कमरे से बाहर निकल गयी । ठाकुर जी ने गर्दन मोड़ कर देखा—निताई हँसता हुआ खड़ा है, उसके दोनों हाथों में कदम्ब का फूल है । अपने दोनों हाथ आगे बढ़ा कर निताई बोला—'लो, कवि का उपहार !'

ठाकुर जी लज्जा से छुई मुई होकर बोली—' उँ हूँ !'

'तब मैं भी दूध नही लूँगा ।'

ठाकुर जी उसके दोनों हाथों से फूल झपट कर दौड़ कर भाग गयी ।

निताई नयी कविता के टेक में उलझ गया । आज उसे एक नयी कड़ी मिली हैं । गुनगुनाते हुए उसने एक लकड़ी चूल्हे में डाल दी ।

गाड़ी चली गयी है, ड्यूटी पूरी कर अब राजन चाय और चीनी लेकर आयेगा । और एक बार चाय चलेगी ।

नये गीत की कड़ी, बहुत अच्छी है । निताई खुश हो उठा ।

'मन की चदरिया से विरहा की अग्नि, कौन सका है बाँध ?
आँसू बन कर ढुलक पड़ेगी अगर लिया किसी ने बाँध'
उसे आज अनुभव हुआ है—ठाकुर जी को वह प्यार करता है।
ठाकुर जी भी उसे प्यार करती है।

अपने आप ही गुनगुनाते हुए उसने टेक दी—'करूँ मैं कौन उपाय ?'

अचानक उसका गीत रुक गया। एक बात याद पड़ते ही वह गाना भूल कर काँप उठा।

ठाकुर जी की जात दूसरी है, किसी और के साथ उसका ब्याह हो चुका है। यह एक भयंकर अपराध है, पाप है।

निताई बहुत देर तक चुप रहा। सुनसान में बैठ कर वह अपने मन पर दबाव देने लगा। बार-बार वह काँप उठता। उसका मन किसी भी प्रकार नहीं मानना चाहता। विवश मन लज्जित भी नहीं होता और न ही दुःखी बल्कि—वह बहुत खुश है बहुत संतुष्ट। कमरे में चारों तरफ जैसे ठाकुर जी खड़ी है—इधर उधर, और वहाँ। अंधकार में सफेद साड़ी पहने वह खड़ी है, निताई के मन की बात सुनने के लिये। निताई व्याकुल हो उठा है, उसने कमरे की खिड़कियाँ खोल दी। उदास दृष्टि से वह खिड़की से बाहर देखता रहा। निताई को लगा काश फूल की तरह कोई अपने सर पर स्वर्ण-बिन्दु रखकर चली आ रही है। जैसे ठाकुर जी कमरे से निकल कर वहाँ पहुँच कर खड़ी हो गयी है। खिड़की खुलते ही, गुस्से में जाते हुए वह खड़ी होकर मुड़कर देख रही है—कवि उसे पुकारता है या नहीं !

निताई का हृदय कसमसा उठा। वह कमरे से बाहर निकल गया, जा बैठा कदम्ब की छाया में। रंगीन फूल से भरा पेड़। चौड़े-चौड़े पत्ते के आवरण में अवगुंठित फूल लाल ! आज के पहले कभी उसने वृक्ष की यह शोभा देखी है, उसे स्मरण नहीं। सामने ही रेल की पटरियों के पार जंगली वृक्षों का बन है। उसकी मीठी सुगन्ध आ रही है।

कदम्ब के वृक्ष में कोमल नये पत्ते दीख पड़े हैं। वर्षा होते ही कदम्ब के फूल फूट पड़ेंगे। दूर के आम के बगीचे में दो कोयल कुहुक रही हैं—'कुहु, कुहु' एक चिड़िया पुकार रही है। कुछ पंछी आकाश पर इधर से उधर उड़ रहे हैं। और उसे लगा की कदम्ब के गाछ के चारों ओर रंगबिरंगी तितलियों का मेला लग गया है।

ठाकुर जी जैसे तेज कदम बढ़ाती हुई चली आ रही है—इधर यहाँ निताई का शरीर सिहर उठा है। वह आँखें बन्द किये बैठा रहा। मन ही मन पुकारा—आओ। आओ ठाकुर जी, तुम्हारे हृदय की व्यथा मैं अनुभव कर रहा हूँ। आओ अपराधी मैं हूँ, तुम नहीं। नरक में जाना होगा तो मैं सच कहता हूं कि हँसता हुआ मैं जाऊँगा। तब भी तुम्हें नहीं कह सकता कि तुम न आया करो।''''

उसे याद पड़ी चांद के कलंक की बात। उस चांद को देखने से भी कलंक लग जाता है। निताई मगर कभी इस बात को नहीं मानता। मन में वह गाने लगा—जैसे अपने आप कहीं से भर कर भाव आये हों—

चन्द्र कलंकित देखकर होता है अपराध
लेकिन कैसे मिटे भला चन्द्र दर्शन की साध।

उसके लिये ठाकुर जी वही चाँद है। ठाकुर जी अगर अब न आये तब निताई कैसे जिन्दा रहेगा? यहां रहकर वह क्या करेगा? तब सुख कहाँ है? वह यहीं बैठा रहेगा—गदराये कदम्ब की छाँव में बैठा-बैठा ठाकुर जी की बाट जोहेगा और अपनी दृष्टि में प्रतीक्षा को सजीव रूप देगा।

चन्द्र कलंकित देखकर होता है अपराध

इससे अच्छा है उसकी आँखें फूट जाये। और चन्द्र दर्शन की साध मिट जाये।

'ओ मेरे चाँद, तेरे लिये—'

ओ हो, ! भाव का जैसे तूफान आ गया है।

ओ मेरे चाँद तेरे लिये

होऊँ मैं वैरागी ।
राह चलूँ रात भर जागूँ
चाह तुम्हारी आगी,

'वाह, वाह वाह, सुन्दर। अरी ओ ठाकुर जी, कैसा भाग्य लेकर तुम आयी हो, कवि से दिल लगाया, तभी तो—तभी तो आज ऐसी कड़ी अपने आप पंख लगा कर आयी !'

निताई उठा। वह चल पड़ा रेल की पटरियों के किनारे किनारे, जिस ओर से ठाकुर जी आती है। कुछ दूर जाने पर सड़क सुनसान होते ही वह गीत गाने लगा।

रेल का पुल टूट गया है। निताई नदी में उतर गया। नदी में पानी घुटने भर है। इसी तरह तो नदी पार कर रोज ठाकुर जी आती जाती होगी। निताई नदी पार कर खड़ा हो गया।

वह बिल्कुल आत्म विभोर होकर चल पड़ा था। बायां हाथ रान पर रख कर और दाहिने हाथ की अंगुली से अपने सामने के पथ की ओर इंगित करता, गीत गाता हुआ वह चल पड़ा था—जैसे ठाकुर जी उसके आगे-आगे चली जा रही हो। हो सकता है कि वह बिल्कुल ठाकुर जी की ससुराल में ही जा हाजिर होता, लेकिन नदी में पैर रखते ही उसे ख्याल आया कि वह कहां जा रहा है और किस लिये ? ठाकुर जी की ससुराल में अगर वह जा पहुँचे तो, यह गीत गायेगा—अरी ओ मेरे चांद ?' तब ठाकुर जी की हालत कैसी होगी ! ठाकुर जी का पति क्या कहेगा ? सभी ठाकुर जी कोसेंगें—उसकी पुतलियों पर ठाकुर जी की छवि छा गई। खोयी-सी ठाकुर जी सिर्फ रोयेगी।

ठाकुर जी की निन्दा घर द्वार और अड़ोस-पड़ोस सभी जगह होगी 'देखो तो, भला इस कल मुँही को प्रीत करने चली है, अपने आदमी को छोड़ कर—।'

गांव की बड़ी बूढ़ी ठाकुर जी को गालियां देंगी।

वह अगर ठाकुर जी को लेकर यहां से भाग जाये तो, तोभी लोग

बोलेंगे—'छोकरी खराब हो गयी। निताई के साथ घर छोड़ कर भाग आयी है।' ठाकुर जी जहां जायेगी वहाँ ही बोझ हो जायेगी। वहाँ भी वह सर नहीं उठा सकेगी।

निताई नदी के तीर पर बैठ गया।

अपने आप ही उसने कहा—'तुम मेरे लिये आकाश के चाँद से भी बढ़ कर हो ठाकुर जी। तुम वहीं शोभा पाओ।

ओह, आज हुआ क्या है? भाव भाषा के साथ-साथ आ रहे हैं—

चन्दा तुम रहो चढ़े आकाश
मैं धरती से तुम्हें निहारू
छूकर तुम्हें कलंकित करना
मैं कदापि नहीं चाहूँ

निताई इन्हीं पंक्तियों को गुनगुनाता हुआ लौट पड़ा।

राजा न कहा—'कहां गया था उस्ताद?'

निताई ने हँसकर कहा—'कविता, राजन, कविता! सुन्दर, अति सुन्दर। इसीलिये तो गुनगुना रहा हूँ और भौरें की तरह टहनियों पर चक्कर लगा रहा हूँ।'

'अच्छा, सुन्दर-सुन्दर कविता?'

'हां राजा, ऐसी कविता जिसे कहा जा सकता है ऊँचे स्तर की।'

'तब तो, तुम बैठो। हम ढोलक लाता है।'

राजा ढोलक लेकर बैठ गया

राजा गाने लगा।

अचानक ढोलक बन्द कर राजन ने कहा—'अरे उस्ताद तुम्हारी आँखों से पानी निकल रहा है!'

आँखें मिटमिटाकर निताई ने कहा—'हाँ, राजन पानी नहीं, खुशी के आंसू हैं।'

दूसरे दिन निताई सबेरे से ही कदम्ब के गाछ के नीचे जा बैठा। आज सबेरे से ही उसे ऐसा लग रहा था जैसे न खुशी है, न दुःखी। जैसे वह बैरागी हो गया है।

कल दिन भर और रात भर वह मन ही मन बहुत कुछ सोचता रहा है। शाम को राजन के घर गया था। राजा की बहू बहुत मुँह की छोटी है। राजा निताई को हर प्रकार की मदद करता है, इसलिये वह निताई से बिगड़ी रहती है। फिर भी वह गया था उसके घर। राजा को बहुत खुशी हुई थी। आश्चर्य की बात तो यह है कि कल राजा की बहू ने भी इससे दो-दो मीठीं बातें की, घूँघट के अन्दर से ही उसने कहा था—'ओह, आज किधर सूरज उगा जो उस्ताद को हम लोगों की याद आयी !'

निताई ने उसी से बात-चीत के सिलसिले में यह सब कुछ जान लिया कि ठाकुर जी का मरद कैसा है ? क्या है ?

ठाकुर जी का मरद देखने योग्य है।

'रंग गोरा, समझे उस्ताद, वैसे ही ललछाह गढ़न। आदमी भी बड़ा अच्छा है। दोनों में पियार भी खूब है, समझे !'

स्थिति भी अच्छी है। बड़े मजे से शांति पूर्वक घर-संसार चल रहा है। राजा की बहू ने कहा—'जिसे कहा जाता है सुख शान्ति, आठ दस गाय बैल। दो हल हैं। खेती भी है खलिहान भी। ठाकुर जी तुम लोगों की किरपा से मजे में है।'

निताई ने कहा—'हम लोग तो हमेशा ही सुख की कामना करते हैं महारानी जी !'

राजा की बहू विचित्र है वह अब तक ठीक थी अब वह महारानी सम्बोधन सेखर में लगी आग की तरह धधक उठी—'तुम्हारी यही, यही बात मुझे नहीं सोहाती। महारानी ! बड़ी महारानी हूँ। मेहतरानी नौकरानी मुझसे कहीं अच्छी है। न घर-न द्वार। रेल के घर में रहना —आज यहाँ, कल वहां।'

राजा यह सुन कर जल उठा था—'क्यों हरामजादी ? क्या कहती है री ?'

'बोलती क्या हूँ, तुम क्या बोलते हो, मुँह पर ताला लगा दोगे बोलूँगी नहीं ! डर पड़ा है !'

इसके बाद ही कुरुक्षेत्र । राजा ने पकड़ा उसका झोंटा । उसे छुड़ाने के लिये निताई ने चेष्टा की थी; लेकिन उसकी चेष्टा से कुछ नहीं हो सका । राजा की बहू करीब रात के बारह-एक बजे तक रोती-धोती रही । राजा और निताई को कोसती रही, गालियाँ देती रही । आज सवेरे-सबेरे भी एक पकड़ हो चुकी है ।

निताई इसलिये उदास नहीं है ।

कल सारी रात अपने मन से वह लड़ता-झगड़ा रहा । अन्त में किसी तरह समझा बुझा पाया है । प्रेम, प्रेम तुम करो, मगर किसी से कहो नहीं—यहाँ तक कि ठाकुर जी को भी नहीं । वह सुख से जीवन बिता रही है—उसका जीवन सुखी हो । तुम अपने दिल के लिये उनका सुखी संसार नष्ट न करो ।

नियत समय पर ठाकुर जी आयी जैसे घड़ी की सुई देख कर । रेल की पटरियों पर प्रतिभासित हुआ चकमक करता हुआ एक स्वर्ण बिन्दु । इसके बाद धीरे-धीरे काश फूल की तरह स्पष्ट हुई एक सफेद चलती फिरती रेखा । धीरे-धीरे करीब जब आयी तो वह हो गयी ठाकुर जी । होठों पर हँसी सँजोये ठाकुर जी उसके सामने आ खड़ी हुई ।

'कवि !'

निताई रूँधे हुए गले से बोला—'कमरे में बर्तन है, दूध रख दो ।'

'नहीं, तुम अपना दूध ले लो । और—'

'और क्या ?'

'धूप में आयी हूँ, दो-चार छन बैठूँगी ।'

'नहीं ठाकुर जी, इस तरह मेरे कमरे में बैठना ठीक नहीं है । लोग क्या सोचेंगे ?'

ठाकुर जी स्तब्ध हो गयी। स्थिर दृष्टि से निताई को देखती रही।

निताई बोला—'दो चार क्षण बैठना ही है तो अपनी जीजी के घर जा कर बैठना। लोगों का बुरा भला सोचना कोई दोष नहीं है। जरा तुम्हीं विचार कर देखो ठाकुर जी।'

निताई के चेहरे पर बेबस आदमी की तरह तरुण हँसी की रेखा खिंच गयी।

ठाकुर जी पैर पटकती हुई चली गयी।

निताई एक गहरी साँस लेकर नीरव बैठ गया।

× × × ×

इसी प्रकार दिन कटने लगे। निताई मन मार कर बैठा रहता। कविता को संगीत में पिरोता भी नहीं, ठाकुर जी आती हैं मगर वह भी उससे बातें नहीं करती। पैर पटकती हुई आ खड़ी होती है, दूध के बर्तन में दूध देकर चली जाती है।

एक दिन निताई ने कहा—'सुनो।'

ठाकुर जी सुनकर भी अन सुनी करते हुए रुकी नहीं। एक बार निताई को घूर कर देख लिया सिर्फ।

निताई ने पुनः पुकारा—'ठहरो, सुनो भी ठाकुर जी।'

इस बार ठाकुर जी खड़ी हुई।

'इधर देखो,'

ठाकुर जी मुड़ कर खड़ी हुई। निताई की आंखों में भी पानी भर आया। वह एक पल रुक कर हाथ से इशारा करते हुए बोला—'अच्छा, जाओ, जाओ किसी और दिन कहूँगा।'

ठाकुर जी भी रुकी नहीं, चली गयी।

कई दिन फिर पूर्ववत कटे। कोई किसी से बातें नहीं करता। एक दिन ठाकुर जी दूध देकर चुपचाप खड़ी रही। कई मिनट के बाद बोली—'उस दिन तुमने कहा था, क्या कहोगे—बोले नहीं आज तक?'

निताई ने कहा—'कहूँगा।'

'कहो न ।'

कुछ क्षण चुप रह कर निताई ने कहा—'कभी कह दूँगा ठाकुर जी ।'

ठाकुर जी जरा हँसी । उसकी इस प्रकार हँसी देखकर हृदय में उसाँसें भर गयीं । वह साथ-ही-साथ मुड़ी और कमरे से निकल कर चली गयी ।

निताई के हृदय में भरी उसाँस जैसे फूट कर निकली । वह मन की बात कह नही सका । नहीं कहना ही अच्छा है । ।

बात मन की रहने दो मन में
रहो सुखी दूर दूर,
होने दो दिल मेरा चूर चूर
लगी लगन यही मन में ।

बहुत दिनों के बाद निताई भावना को भाषा में अवगुंठित पा सका है । दुःख में भी निताई खुश हो उठा । वह गुनगुनाने लगा और चल पड़ा बाग की ओर । वहाँ उसके गीत को समझने वाले बहुत हैं । बाग का हर पेड़ उसके गीत का श्रोता है । उसी बगीचे में ही सबसे पहले उसने अभ्यास किया था । पेड़ों को वह अपना गीत सुनाता । आज भी वह बाग में पहुंच कर गाने लगा—

रहो गवाह तरूलत, सुनो मेरे मन की व्यथा
कितना है दरद दिल में अनुमान करो तुम्हीं लता

गीत शेष कर वह चुप चाप बैठ गया । ऊँहूँ, ऐसे दिन अब नहीं कटता । अब वह अपने मन की आग में तिल-तिल जल नहीं सकता । सिर्फ मन की आग में ही नहीं पेट की आग में भी वह जल रहा है । रोजी गयी, पूँजी खत्म हो गयी है । उसकी एक मात्र रोजी है मोट ढोना लेकिन कवि होने पर तो यह काम वह नहीं कर सकता । यहाँ तो वह किसी भी तरह नहीं कर सकता । यहां से उसका चला जाना ही अच्छा है । ऐसा ही करेगा वह । कल ही चण्डी माता को प्रणाम कर वह

निवेदन करेगा—'माता, तुमने अपने अभागे पुत्र को कवि तो बनाया मगर उसके हृदय की पीड़ा और पेट की आग नहीं बुझाई। उसका कोई उपाय नहीं किया। वह चला, उसे विदाई दो। उसे याद आयी बहुत दिनों की पुरानी बातें रास्ते पर गीत गाकर भीख माँगने वाले के मुँह से सुना हुआ गीत—खुदीराम के फांसी पर चढ़ने का गीत।

दो विदा या, लौट के आऊँ
कहूँ कथा क्या हृदय है फटता
अश्रु धार नहीं है रुकता।

गम्भीर होकर वह बैठा था। उसकी गम्भीर मौनता को तोड़ दिया राजन के चीत्कार ने। राजा किसी को क्रोधित होकर चेतावनी दे रहा है—'चुप रहो।'

दूसरे ही क्षण किसी स्त्री का स्वर गूँजा—'चाय और चीनी लेकर तुम क्यों जावोगे? किसके लिये? शर्म नहीं आती है, बेहया।'

इसके बाद और कुछ सुनाई नहीं पड़ी। सुनाई पड़ा—धप धाय धड़ाम! शब्द ध्वनि! और किसी के स्त्री के चीत्कार करने की ध्वनि राजा अपनी बहू को पीट रहा था। राजा की बहू जोर जोर से गरज, गरज कर रो रही थी। निताई छी छी कर उठा। यह चाय का चस्का छोड़ना पड़ेगा।

'उस्ताद-उस्ताद!' पत्नी को मार पीटकर राजा अब निताई के घर में आया 'बनाओ चाय। पंदरा सोलह आदमी के लिये।' आधा सेर के करीब उसने चीनी उसके सामने रख दी। राजा की पत्नी का दोष क्या है? इतना फजूल खर्च कोई कैसे बर्दाश्त करे?

निताई ने गम्भीर होकर कहा—'राजन!'

राजन ने निताई की बात पर ध्यान ही नहीं दिया। वह कमरे से बाहर निकल गया, दरवाजे पर खड़ा होकर पुकारा—ओ, भाई हो। हां, हाँ यहाँ आओ। आओ सब लोग आ जाओ।

निताई विस्मय से उठकर बाहर आया।

औरत-मरदों का एक झुण्ड चला आ रहा है। ढोलक, टीन के डब्बे लकड़ी के बक्स, गठरी—उनके पास बहुत सी है। औरतों का पहरावा विचित्र है, पुरुषों के चेहरे पर भी एक अस्पष्ट छाप अङ्कित है। इन लोगों को निताई पहचानता है।

'चाय दो; मर गया माँ कसम!' यह बात जिसने कही—वह था झुण्ड के पीछे, और तब वह भीड़ को चीरती हुई सबसे आगे आ खड़ी हुई। एक दुबली पतली गोरी सी लड़की। उसकी अजीब आँखें हैं। बड़ी बड़ी जैसे कटार सी धार हो! कौतुक से क्षण-क्षण वह चंचल हो उठी है। सफेद आग की लौ में नाच रहे हैं जैसे दो काले पतंगे। मृत्युबाण करने वाले दो काले भौंरे।

राजन ने निताई को दिखाकर कहा—'यही है हमारा उस्ताद।'

निताई आश्चर्य चकित हो गया, वह उन लोगों को देख कर ही पहचान गया है, ये हैं झूमर के दलवाले। लेकिन ये आये कहाँ से?

'इन्हें जबरदस्ती उतार लिया'—राजा ने कहा—'गाड़ी से उतार लिया उस्ताद। आज गाना होगा। तुम को गाना होगा।'

दल की एक लड़की ने मुँह बिगाड़कर कहा—'यही है तुम्हारा उस्ताद? ऐ राम!' इतना कह कर वह ठठाकर हँस पड़ी। उस हँसी से उसका पतला दुबला शरीर थर-थर काँपने लगा। वह लड़की केवल भर मुँह नहीं हँसती, उसका अंग अंग उठता है। और उसकी हँसी की क्या बहार है? जब वह हँसती है तब आदमी के मन को टुकड़े-टुकड़े कर के धूल में मिला देती है।

१०

जल की बहती धार में किसी पैनी चीज से रेखा खींचने पर जिस प्रकार पल भर में रेखा बनकर मिट जाती है, उसी प्रकार निताई मीठी हंसी हँस पड़ा—उसकी इस हँसी में कनक-कामिनी-सी लड़की की क्रमबद्ध हँसी खो गयी। उदास निताई की पल में चकित कर देने वाली विनीत और सहन-शीलता पूर्ण हँसी में जरा भी कुछ मीन-मेख नहीं है, जिसे काटी जा सके। यह लड़की भी मगर बहुत अजीब है। वह तत्क्षण ही अपने हाव-भाव में तीक्ष्णता खींचकर लाई। उसके कुछ कहने के पूर्व ही निताई ने विनम्र होकर स्वागत के स्वर में कहा—'आइये, आइये।'

वह अपने कमरे में जा पहुँचा—सभी ने उसका अनुसरण किया। निताई का कमरा—रेलवे कुली बैरक में है। कन्सट्रक्शन के समय यहां था इंजिनियरिंग विभाग का हेड आफिस। उसी समय यह सब बैरक बने थे। चकचक करता हुआ सिमेंट का बरामदा, आंगन। उस बरामदे और आँगन में ही दल बैठ गया।

यह दल झूमर गाने वालों का दल है। बहुत दिनों पहले झूमर कुछ और था, लेकिन अब नीची श्रेणी की वेश्या कई बाजे वालों को साथ लेकर यह पेशा करती हैं। आज यहां कल वहां—इनका कोई ठिकाना नहीं। ये किसी भी वट-वृक्ष के नीचे अपना डेरा डाल देते हैं। कहीं कोई इन से न भी गवाये तो ये रास्ते के किनारे अपने आप दल बांध कर गाते हैं, बजाते हैं। दल की औरतें नाचती हैं, गाती हैं—अश्लील, भौंडे और भद्दे गीत। भिनभिन करने वाली मक्खियों के झुण्ड की तरह रसिक श्रोता आ इकट्ठे होते हैं। दो चार पैसे का टिकट भी लग

जाता है। लड़कियों के तन का लेन-देन भी होता है। पर अश्लील गीत ही इनका सर्वस्व अवलम्ब नहीं हैं। पुराण की कथा पर रचे हुए गीत गाना भी ये जानते है। बाजे वालों में दो-एक निताई की तरह कवि हैं, आवश्यकता पड़ने पर मजलिस में शागिर्द का काम भी कर लेते हैं और जरूरत के समय निताई की तरह कवि होकर भी खड़े हो जाते हैं।

जो सड़कों पर पेड़ों के नीचे दिन रात काटते रहे हैं, छप्पर और आंगन बरामदे पाकर उनके कृतार्थ होने की बात ही है। वे निहाल हो गये! खुश होकर चटाइयाँ बिछा-बिछाकर सब बैठ गये। केवल वह कनक छड़ी सी छोकरी फर्श पर ही लेट गयी और परम सन्तोष को रोक नहीं सकी। उसके मुँह से निकल पड़ा—आह! जीवन की समस्त निराशा और करुणा भी इस 'आह' में मिली थी जैसे अब उस की जीने की इच्छा नहीं है, वह मरना चाहती है।

'वसन'—दल में एक प्रौढ़ा भी है, दल की मालकिन, वो ही बोली—'वसन! बुखार में पक्की जमीन पर क्यों सोती है? उठ, उठ वहाँ से।'

उस छोकरी का नाम है वसन्ती! वसन्त ने इसका कोई जवाब नहीं दिया। ऊँची आवाज में उसने कहा—'अरे कहां गये उस्ताद, चोखे-अनोखे जी, चाय-वाय पिलाओ!'

निताई चाय का पानी चूल्हे पर चढ़ा चुका है। उसने कहा—'बस अब पाँच मिनट। लेकिन तुम्हें बुखार है न? तुम वहाँ क्यों सोती हो? कुछ बिछा दूँ?—चटाई।'

वसन्त ने आंखें तक नहीं खोली। आँखों को बन्द किये ही वह ठठाकर हँस पड़ी और बोली—'यह लो, अरे वाह रे मेरे प्यारे, प्रेम करने लगे मुझसे; अभी ही, मेरे लिये इतना दरद।'

उसके साथ ही साथ दल की और छोकरियां भी हँस पड़ी।

ठाकुर जी के नये प्याले में चाय भर कर निताई वसन्त के मुंह के

पास ले गया, बोला—'जरा सम्भलकर पीना, चाय के साथ वसीकरण रस भी मिला दिया है।'

कवि निताई रस का ही कारबारी ठहरा। इस मजाक के लिए ऐसी मुँह फट को पाकर वह जैसे पागल हो उठा है।

चाय पाकर प्यासी बिल्ली की तरह वसन्त आग्रह से उठ बैठी। मुँह मटकाकर हंसती हुई वह निताई को घूरने लगी। 'क्या कहने हैं, इतना मोहित हो गए कि वसीकरण रस पिला रहे हो!'

दल के और लोगों को चाय देते-देते निताई ने गाना शुरू कर दिया—

'प्रेमडोर से बाँध सकी नहीं हाय सखी री!'
बोली चन्द्रावली चकोरी,
'लादे मौहे वशीकरण हूँ, पैयां पड़ूँ मैं तोरी',

इस गीत की बन्दिश निताई की नहीं हैं, निताई के श्रद्धेय कवि तारण मण्डल का बनाया हुआ हैं।

झूमर दल की लड़की, समाज के बहुत ही नीचे स्तर से इनकी उत्पत्ति हैं, पढ़ने लिखने से कोसों दूर, फिर भी गीत-संगीत के क्षेत्र में इनकी अपनी आश्चर्य जनक संस्कृति है। इसी पेशे के द्वारा यह पुराण बताती है, पौराणिक कहानियों की उपमा देकर व्यंग और श्लेष में बातचीत करने से यह समझती है, खूब मजे में। प्रशंसा और सहानुभूति भी इन्हें मिलती है। निताई के गीत का अर्थ वसन्त समझ गयी। उस की दोनों आँखें चमक उठी। लेकिन दूसरे ही क्षण उसने गर्दन झुकाकर चाय के प्याले से होठों को जोड़ दिया।

पुरुषों में से एक ने कहा—'अजी वाह, वाह।'

'हां, भ्रू कुंचित कर एक स्त्री ने कहा—'हाँ पंछी बोलता भी है।'

निताई के गीत के भाव में जो व्यंग था वह अकेली वसन्त के ही नही दल की सभी तरुणियों के बिंध गया था। एक दूसरी ने कहा—'राख में दबी हुई आग है, छूआ कि जली।' 'झड़े हुए चूल्हे का काला

कोयला हैं—आग से दप-दप ।'

प्रौढ़ा विचार मग्न सी होकर मुस्कुराहट को रोकते हुए बोली—'मगर तुम लोगों की तो हार हुई—जवाब नहीं दे सकीं ।'

वसन्त ने कोई उत्तर नहीं दिया, चाय समाप्त कर प्याला रखकर पुनः वह फर्श पर लुढ़क गयी । राजा इसी समय कमरे में आया, उसके दोनों हाथों में मिट्टी की हांडी और सकोरे थे । मिलिटरी राजा ने हुक्म दिया 'भाई हो, उस पेड़ के नीचे जगह साफ हो चुकी है । अब पकाओ खाना, खाओ दाना, और गाओ गाना ।

निताई ने प्रश्न किया—'राजन ! यह जो तुम खर्च कर रहे हो—'

राजा को वक्त नहीं है और उसके लिए इस संसार में गोपनीय भी कुछ नहीं है । वह उसे रोककर बोला—'सब ठीक है भाई, सब ठीक है । बनिया मामा ने आठ आना दिया, कोयला वाला एक आना; परचूनिया आठ आना, मालगाड़ी का ड्राईवर भी आठ आना दिया और हमारा एक रुपया—बस जोड़ लो—तुम्हें अपना देना हैं अढ़ाई रुपया और बारह आने का चावल दाल । बस होगया ।'

अंतिम शब्द कहता हुआ वह चला गया । इधर शंटिंग लाइन से एक गाड़ी को कुली धकेल कर प्रायः प्लाट तक ले आए हैं ।

निताई पेड़ के नीचे आ गया । खानाबदोशों की तरह जीवन बिताने वाले इस वर्ग ने इसी बीच निपुणता के साथ पेड़ की छाया में अपना डेरा डाल लिया है । ईंटों को जोड़ कर अँगीठी बनाली गयी है और उसमें आग जोड़ दी गयी है । एक छोकरी पानी लाने में लगी है, कोई सब्जी तराश रही है और प्रौढ़ा अँगीठी के सामने बैठी मिट्टी की हांडी साफ कर रही है । सभी के बाल भीगे हुए हैं तथा अस्तव्यस्त रूप में पीठ पर चंवर की तरह झूल रहे हैं । स्त्रियों ने स्नान कर लिया है ।

वहां यदि कोई नहीं है तो वह है वासन्ती । निताई को देखकर प्रौढ़ा ने कहा—'बस भैया बस !'

कई मरद एक साथ कह उठे—'अरे वाह, आप खड़े क्यों हैं ? पधारिए ।'

अंगीठी में एक लुकाठी डालकर प्रौढ़ा ने कहा—'बहुत मीठा गला है मेरे भैया का, बहुत ही सुरीला'—इसके बाद उसकी ओर देखकर किंचित मुस्कुराती हुई बोली—'इस लाइन में रहोगे या काम काज करोगे तुम ?'

'इसी लाइन में रहने की इच्छा है; लेकिन सोची हुई बात किसी की पूरी हुई है ?'

'ब्याह कर चुके हो ? तुम्हारे और कौन कौन हैं ?'

'ब्याह !' निताई हंसा । हँसता हुआ ही बोला—'माँ हैं, बहन हैं। माँ बहन के घर रहती है और मैं अकेला हूँ—सबसे अलग ।'

'तब हम लोगों के दल में आ जाते क्यों नहीं हो ?'

इस प्रश्न का उत्तर निताई तपाक से नहीं दे सका । कुछ कहने के पहले ही राजा की याद आ गई, याद आ गयी—श्यामल-सरस डंठल की तरह कोमलांगी—ठाकुर जी की । वह चुप रहा ।

कछ क्षण उत्तर की प्रतीक्षा करने के बाद प्रौढ़ा ने पुनः कहा—'क्या सोच रहे हो भैया ।'

'भैया सोच रहे हैं तुम्हारे मन की बात ।' हंसी के क्रम के साथ साथ पीछे से यह आवाज आयी । निताई ने मुड़कर देखा । पीछे खड़ी है भीगे वस्त्रों में लिपटी—सद्य स्नाता वासन्ती ; उसकी भीगी लटों से अब भी पानी की बूंदें टपक रही थीं । निताई अवाक रह गया ।

'तुम्हारी बहू कैसी है, हो ? वशीकरण मंत्र से उसे तो बाँध लिया होगा तुमने ।'

निताई आश्चर्य से इतनी देर बाद बोला—'बुखार में तुमने नहाया है ?'

'नहीं, केवल धो लिया है। मेरा बुखार यह चन्द्रावली के प्रेम का बुखार है न।' और वह स्वभाव के अनुसार हँस पड़ी। भीगे हुए कपड़े के अन्दर से उसका प्रस्फुटित सर्वांग भी उसके साथ हँस रहा था।

निताई शर्म से झेंप गया।

प्रौढ़ा ने कहा—'और नहीं तो क्या तुम्हें बुखार जैसा आता है, मैं जानती हूँ, चल जा भी कपड़ा बदल। तू मरेगी इसी तरह।'

वसन्त ने हँस कर कहा—'मर जाऊँगी तो उठाकर फेंक देना। लेकिन मैं बिना नहाये नहीं रह सकती एक दिन भी। न नहाऊँ तो—अरे बाप रे शरीर से गन्ध निकलने लगती है छि: !'

एक दूसरी ने हँसकर कहा—'ऐसा कहो कि बालों पर कंघा नहीं फिरता, पत्ते नहीं कढ़ते, शृंगार नहीं कर सकती।'

वसन्त ने अपने केशों को हथेली से सम्भालती हुए कहा—'अरे मुझे तो बालों से प्रीतम की राह झाड़नी नहीं पड़ती। तो सम्भालूँ नहीं, पत्ते नहीं निकालूँ तो करूँ क्या ?'

शृंगार इनके व्यापार का एक आवश्यक उपकरण है। किन्तु नारी के चित्त का स्वाभाविक गुण, इसके बिना वह रह भी नहीं सकती। जहाँ दल के किसी न किसी पुरुष से किसी न किसी स्त्री का प्रेम सम्बंध है, वहाँ मान-अभिमान हैं, साध्य और साधना भी है। मगर वसन्त का प्रेम पुजारी कोई नहीं। वह किसी को पसन्द नहीं करती। कोई पतंग की तरह उस पर आ मंडलाता है तो वह उसकी लौ शिखा में टिक नहीं पाता। इसी लिये वसन्त ने अपनी साथिन को ऐसी बात कही। आगे और कुछ कहने पर अवश्य झगड़ा हो जाता, क्योंकि उसके वाक्य बाण से घायल स्त्री फुँकार उठी थी। लेकिन प्रौढ़ा ने बीच में ही बात बदल दी वह हँसकर बोली—'वसन्त, देख देख, उस्ताद तुझे पसन्द है या नही ?'

उसकी बात खत्म होने से पहले ही वसन्त की उच्छ्वासित हँसी से दब गयी। निताई पसीने से लथपथ हो उठा। प्रौढ़ा उसे धमकाती हुई

बोली—'अरी वाह री वाह ! तेरी हँसी ।'

हँसी रोक कर वसन्त ने कहा—'हँसू नहीं तो और क्या ?'

'क्या ?'

'दइया ! वह काले कलूटे—; राम राम !'

सभी आश्चर्य से उसकी ओर देखने लगे ।

वसन्त ने फिर कहा—'काले अंग को पास पाकर मैं भी काली हो जाऊँगी मौसी !' मुँह बिगाड़ कर वह हँसी फिर बोली—'चलूँ कपड़े बदल लूँ । नमोनिया, क्या कहते हैं, वही होने पर कौन देख भाल करेगा बाबा ।' वह हिलती-जुलती चली गयी ।

एक लड़की ने कहा—'बाप रे बाप कितना छाव जानती है ।'

प्रौढ़ा ने उसे डाँटा—'अच्छा, तू जरा चुप तो रह सती सतवंती !'

वह लड़की बिल्कुल चुप नहीं हुई । अपने आप ही बक-बक करने लगी ।

प्रौढ़ा ने पुनः कहना शुरू किया—'ऐ लड़के मैं कुछ कह रही हूँ !'

'मुझे, कह रही हैं ?'

'हां तुझे ही कह रही हूँ, लोग कहें उस्ताद, मैं तुझे लड़का ही कहूँगी मेरे सामने तू और है क्या ? नाराज न होना !'

'नहीं, नहीं नाराज क्यों होऊँगा ।

'अगर ऐसा ही है तो हम लोगों के संग हो जाओ ।'

'नहीं' निताई ने दृढ़ स्वर में कहा ।

सभी मौन हो गये । निताई वहाँ से उठा,—'तो मैं चलूँ अभी, मुझे भी खाना बनाना है ।'

'अजी ओ कलूटे !' यह वसन्त की आवाज थी । निताई ने मुड़ कर देखा । वसन्त सज बंज कर वेणी गूँथ रही है । घने काले और वेणी गूँथने योग्य केश राशि है उसकी । उसकी ललाट पर सिन्दूर की बिन्दिया, शरीर पर लाल किनारे की साड़ी ।

वसन्त हँस कर बोली—'तुम्हारा नाम मैं रखती हूं कलूटे ! क्या मैं

इस नाम से पुकार सकती हूं ?' वह करबद्ध होकर नाटकीय भाव भंगिमा मे प्रणाम करती है 'कलूटे जी !'

निताई भी हंसी नहीं रोक सका—'बड़ा अच्छा नाम है यह तो, काले कलूटे भी कह सकती हो।'

'तब तो ठीक है, अब तुम मेरा एक काम करना पड़ेगा।'

'क्या ?'

'दो पैसे की मछली ला दोगे ? बिना मछली के मुँह में कौर नहीं जाता।'

'दो' निताई ने हाथ पसारा लेकिन वसन्त ने जब उसे पैसे देने के लिये हाथ उसकी ओर बढ़ाया तब उसने अपना हाथ थोड़ा खींच लिया, 'अलग से, अलग से जरा।'

'क्यों ? नहाना पड़ेगा क्या तुम्हें ?' उसके होंठ के कोने में धनुष की तरह बाँकापन आया।

निताई मुस्कुरा कर बोला—'काले का स्पर्श कर तुम भी काली हो जाओगी न ?'

वसन्त की मुट्ठी में पड़े पैसे अपने आप निताई की हथेली में आ गये। क्षण भर में ही उसके बाँके होठ कांपने लगे। फिर वे एक भीनी मुस्कुराहट से आरक्त हो उठे। निताई को ऐसा लगा कि यह छोकरी किसी रोमांचक कहानी की रहस्यमयी नायिका है। प्रतिद्वंद्वी अगर सर्प हो तो यह नेवला हो जायेगी। बिल्लार होकर आक्रमण करने से यह बाघिनी हो जायेगी। उसका रोना मुस्कराहट में परिणत हो गया। वह बोली—'इसलिये अलग से ही दिया।'

जल गाँव के पथ पर उसे गीत सूझा—नया गीत। मन में सोच विचार कर उसे उस लड़की की तुलना मिल गयी है। वह कड़ी गुन

गुनाने लगा—

अहा सेमर फूल फूले अँगियारे
चारों तरफ है बहार ! गोरी सब कुछ है निस्सार !

११

शाम को राजा समारोह पूर्वक मजलिस में जम गया। राजा ने मेहनत की सेनापति की तरह। विप्रपद बैठा था राजा बनकर। वह बेचारा वायु रोग के कारण शरीर को हिला डुला तक नहीं सकता। चिल्ला सकता है खूब। उसके चिल्लाने से काम भी कुछ हुआ। परचूनिये ने उसके व्यंग बाण से घबरा कर दरी निकाल कर दी, कोयले वाले ने भी एक सतरंजी दी। बनिये मामा ने पेट्रोमेक्स लाकर स्वयं उसमें तेल भर कर वहाँ जला दिया। भीड़ भी कम क्यों—अधिक हुई। वहाँ के सभ्य-सम्भ्रांत नहीं आये तो क्या हुआ। दुकानदार वर्ग के लोगों से ही भीड़ हो गयी। नीची श्रेणी के लोगों से इतनी भीड़ हो गयी कि तिल रखने की भी जगह नहीं थी।

शुरू हुआ झूमर-नाच। निताई सोचे बैठा था कि उस दल के कवि से दो-दो हाथ हो जायेगा। प्राय: ऐसे दलों में एक गये गुजरे कवि होते हैं। अपने अन्दर गुण विशेष नहीं होने के कारण वे ऐसे दलों में जुटे रहते हैं। मेले में झूमर के साथ ऐसे कवि के होने से जमता भी खूब है। ऐसी बात नहीं कि इस दल में ऐसा एक कवि नहीं है, है। लेकिन आज वह दल के साथ नहीं आया है। किसी कारण वश पीछे रहा गया है। यह दल वास्तव में जा रहा है अलीपुर के मेले में। उससे यह तय है कि दो दिनों के बाद वह सीधा वहीं पहुँच जायेगा। अगर ऐसा नहीं होता तो

निताई को कुछ मौका मिलता। कवि की अनुपस्थिति में केवल नाच की ही मजलिस जमी। ढोलक, डुग्गी और तबला, हारमोनियम, एक वेहला से लेकर बैठे झूमर दल के पुरुष सदस्य। उनके काकुल से तेल चू रहा था, पहिरावे में वे पहने थे गन्दे कुर्ते। स्त्रियों के शरीर पर शोभा पा रहे थे गिलट के गहने—कर्ण फूल, हसलू, बाजूबन्द, चूड़ी। शरीर पर सस्ते कपड़े की बोड़ी, उसपर रंगीन ब्लाऊज। केश-श्रृंगार-आधुनिक परिपाटी का विकृत अनुकरण किया गया है। होंठ और गालों पर लाल रंग के ऊपर सस्ते पाउडर और स्नो का लेप, पैरों में लाल रंग और हाथों में भी लाल रंग लगा है। लेकिन दर्शक इसी से मुग्ध भी हैं। अन्य स्त्रियों में वसन्त ही ऐसी है, जिसकी ओर सभी की निगाहें लगी हैं। निताई सफेद कुरते पर चादर रखे झूमर दल वालों के बीच बैठा है। उसके चेहरे पर गौरवोज्वल हँसी की आभा चमक रही है। आज वह इस मजलिस का एक सम्मानित व्यक्ति है—वह कवि है।

गीत आरम्भ हुआ, नाच के साथ ही साथ एक औरत पहले गीत प्रारम्भ करती है, फिर अन्य औरतें उसे सम्मिलित स्वर में दोहराती हैं। तब पहली स्त्री नाचती है। प्रौढ़ा बीच में पान का डब्बा लिये बैठी थी, उसने निताई से कहा—'बेटा तुम भी टेक पकड़ो।'

निताई हँसा। लेकिन उसने गाया नहीं। पहला गीत खत्म होने को आया। औरतें थोड़ा आराम करने के ख्याल से बैठ गयीं और निताई उठ खड़ा हुआ। कवियों की तरह चादर को कमर में लपेट कर वह करबद्ध होकर बोला—'मैं कुछ निवेदन करना चाहता हूं।'

चारों ओर काना फूसी होने लगी।

'यह कोई बहुरूपिया है?'

'बैठो, बैठ जाओ।'

'एं निताई।'

एक ने उसका मजाक उड़ाते हुए कहा—'मूछ मुड़ा कर आओ।'

अचानक, सभी को शान्त करने के अभिप्राय से, राजा उठ खड़ा

हुआ—'चुप, सब चुप !'

विप्रपद ने भी धमकी दी—'ऐ, यह क्या ? गोल माल बन्द करो।'

सभी चुप हो गये। निताई ने सुअवसर पाकर कहा—'मैं एक कड़ी आप लोगों को सुनाऊँगा।'

'हो जाये उस्ताद, हो जाये।' राजा बोला—परम आनन्द के साथ।

निताई गीत गाने लगा—बायाँ हाथ उसने कान पर रखा और दाहिना हाथ मुद्रा युक्त बना कर झूमते हुआ अलाप भर कर गाया—

अहा, खिली कली, गुंफित गुलाब सी
है निराली छटा
थी छायी घटा, फिर बादल फटा
चांद का घूँघट हटा,
ऐसी न्यारा है मुखड़ा प्यारी का।

'वाह रे वाह, उस्ताद।' राजा तड़प उठा।

विप्रपद भी बोला—'बहुत खूब'

मामा ने भी मन की घुण्डी खोली—'अच्छा, अच्छा।'

निताई उमंग में धीरे-धीरे नाचने लगा। निताई की आवाज में जैसे मिश्री हो। श्रोता भी चुपचाप शान्त बैठे रहे। निताई ने चारों ओर आँखें दौड़ाई, उसके होठों पर हँसी की पतली-सी रेखा थी। राजा के पीछे ही राजा की स्त्री बैठी थी और उसकी बगल में ठाकुर जी। मुग्ध दृष्टि से वह उसकी ओर देख रही थी। एक पल के लिये निताई गाना भूल गया। ठाकुर जी उसकी अवहेलना करते है ऊपर से, अन्दर से नहीं। निताई ने एक गहरी सांस ली।

झूमर दल के ढोलकिये को अच्छा अवसर मिला। वह निताई को नीचा दिखाने के ख्याल से बोला—'यह गया।' अर्थात निताई का ताल कट गया। लेकिन निताई सम्भल गया और ढोलकिये के कहने के साथ ही साथ गाना शुरू कर दिया।

पर जाना ना भौंरे पास तू ?
अरे हाँ पास तू !

हाथ पर ताल देता हुआ वह नाचने लगा। नाचते हुए उसने एक बार मजलिस में को घूर लिया। झूमर दल की लड़कियां मुँह पर हाथ रखकर हँस रही थीं। केवल बसन्त अपनी बाँकी चितवन चला रही है। निताई ने उसकी ओर देखकर ही गाया ?

रस भरा है केवल रूप में
दिल तो है उसका फटा !
अहा खिली कला,
गुम्फित गुलाब सी है निराली छटा।

निताई से बसन्त की आंखें चार हुईं और वह झुंझला कर उठ खड़ी हुई तथा प्रौढ़ा से बोली—'मैं जाती हूँ मौसी ?'

'कहाँ ?,

'डेरे पर, सोने।'

'सोने ?'

'हाँ।'

'क्या हो गया रे तुझे ? बैठ।'

'नहीं, यहाँ मैं गीत नहीं गाऊँगी। जहाँ बन्दर नाचता है वहाँ मैं नहीं नाचती।'

बातें जोर जोर से हो रही थीं। निताई के कानों में उसकी बातें पहुँची जैसे उसे काठ मार गया। बहुत से लोग चिल्ला उठे—'अरे तुम बैठो भी भाई।'

राजा बिगड़ उठा—'क्यों ?'

बसन्त ने कोई उत्तर नहीं दिया, केवल गर्दन का झटका देकर अजीब तरह से मुँह बनाती हुई वह वहाँ से जाने का उपक्रम करने लगी।

चारों ओर शोर मचा। कोई निताई के ऊपर बिगड़ उठा, कोई

पैसे पर नाचने वाली बेवकूफ लड़की की इस शान पर उसे भला बुरा कहने लगा। लेकिन वसन्त ने किसी पर भी ध्यान नहीं दिया। सामने खड़े आदमी से बोली—'मुझे जाने तो दो।'

वह राह छोड़ता या नहीं यह कोई नहीं कह सकता। मगर पीछे से निताई आकर उसकी राह रोककर खड़ा हो गया। हाथ जोड़ कर तथा आग्रह से वह बोला—'मैंने कोई अपराध नहीं किया? तुम न जाओ। तुम्हें मेरी कसम है।'

वसन्त ने कोई उत्तर न दिया। मगर वह मजलिस में लौट आयी। कुछ शान्ति होते ही उसने गाना आरम्भ किया और साथ-साथ नाचना भी। मजलिस दाँतों तले अँगुली काटने लगी। इतना ही नहीं उस पर नाराज राजा भी मुग्ध हो उठा। लड़की का जैसा रूप है, गला भी वैसा ही है—सुमधुर! और इसके अलावे जैसे उसने गीत और नृत्य में अपने तन और मन दोनों को लगा दिया है। द्रुत से द्रुत होते हुए, गीत और नृत्य की लय को, सम पर लाकर वह बिल्कुल स्तब्ध-सी खड़ी हो गयी।

इसके बाद तो वाह-वाह से वहाँ का वातावरण गूँज उठा। चारों ओर से पैसे न्यौछावर होने लगे—एकन्नी, दुअन्नी और पैसे। घनश्याम दुकानदार ने तो पूरा एक रुपया चढ़ाया। वसन्ती को इतनी फुर्सत नहीं कि वह इन सब की ओर देखे। वह पसीने से लथपथ हो गई थी, उसका कलेजा धड़क रहा था। गोरा चेहरा आरक्त हो उठा था। प्रौढ़ा स्वयं उठी और न्यौछावर के पैसों को बटोरने लगी।

चारों ओर से स्वर गूँजा—एक और एक और।

निताई ने वसन्ती की ओर देखा। आँखें चार होते ही उसने नमस्कार कर उसे अभिनन्दित किया।

प्रौढ़ा ने वसन्ती के शरीर पर हाथ रखकर कहा—'उठ बैठ,' कहने के साथ ही वह सिहर उठी—'अरे, यह क्या? वसन्त तुझे तो बुखार है, बहुत तेज बुखार।'

हंसकर वसन्त ने कहा—'एक घूँट दारु, दारु हो तो दो मुझे मौसी।'

भीड़ से ओट में होकर उसने दारू पी तथा पुन: उठ खड़ी हुई। पहले की तरह गति और आवेग वह नहीं ला सकी, वह हाँफ रही थी, गति में थकावट का आभास साफ मिल रहा था। गीत खत्म कर वहाँ से बिना रुके निकल गयी। किसी ने कुछ नहीं कहा जैसे उनकी मांग खत्म हो गई है, आँखों पर लेन-देन के वजन से अधिक उसके दो गीतों और नाच का बोझ हो गया है। रास्ते के किनारे जो लोग खड़े थे वे थोड़ा पीछे हट गये—उसके जाने के लिये राह छोड़ ही दिया।

प्रौढ़ा ने निताई से कहा—'बड़ी, जिद्दी लड़की है।'

निताई भी उसके पीछे पीछे निकला। चारों ओर उसने दृष्टि दौड़ाई—वसन्ती कहां है? मन ही मन इस लड़की से वह हार मान चुका है। उसे लक्ष्य कर वैसा गीत नहीं गाना चाहिये था। नये गीत की पंक्ति उसके मन में पंख लगाकर आयी है लेकिन वह गयी कहां? झूमर दल का डेरा तो यहीं वड़ की छाया है। वहां बैठा है सिर्फ एक मर्द, तगड़ा, हट्टा कट्टा। भैंस की तरह शरीर, उसी प्रकार काला रंग, लाल-लाल गोल आँखें, गूँगे की तरह मौन, गम्भीर। प्यासी भैंस जिस प्रकार पानी पीती है, उसी प्रकार वह दारू पीता है। दिन भर सोता है, शाम के बाद से वह जागता है, पहरा देता है। वहाँ देखा निताई ने वसन्त नहीं है। वह फैली चांदनी में चारों ओर निगाह दौड़ाता है। वसन्त कहीं भी नजर नहीं आती है। यह क्या उसके घर के दरवाजे पर कई आदमी खड़े हैं, क्यों? वह आगे बढ़कर बोला—'कौन है?'

'हम'

निताई ने पहचाना, व्यापारी कासिम शेख का लड़का और उसका गिरोह। उसने पूछा—'क्या है ? यहां क्या है ?'

'वह लड़की तेरे घर में आयी है।'

'आयी है तो ठीक है, तुम लोग यहाँ क्यों खड़े हो ?'

सभी अट्टहास कर उठे।

निताई ने कहा—'चले जाओ यहाँ से तुम लोग, नहीं तो बुरा हो जायेगा। मैं राजा को बुलाता हूँ। पुलिस भी है, उसे बुलाऊँगा।'

वह कमरे में जा घुसा और अन्दर से दरवाजा बन्द कर लिया। लेकिन वसन्त कहाँ है ? कहीं नजर नहीं आती। मगर अन्दर के कमरे की कुण्डी खुली है। दरवाजे पर हाथ रख कर उसने देखा—हाँ, अन्दर से बन्द है दरवाजा।

निताई ने पुकारा—'सुनती हो, मै हूँ, मैं !'

'मैं कौन ?' अन्दर से आवाज आयी।

'तुम्हारा कालू।'

'ओ। उस्ताद।'

'जो कहो तुम, मै वही हूँ।'

अब दरवाजा खुल गया। निताई ने कमरे के अन्दर जाकर देखा वसन्ती सोयी है। तन बदन का होश खोकर। वह लेटे हुए ही बोली—'दरवाजा बंद कर लो।'

'बाहर का दरवाजा तो बंद ही है।'

'छड़ दिवाली तड़प कर टूट पड़ेंगे—वे लोग। बंद कर लो।' वसन्ती एक विचित्र हँसी हँस पड़ी। निताई उस के सर पर हाथ रखते ही चौंक उठा—'यह क्या ? अरे, तुम्हें तो भयंकर बुखार है। सर दबा दूँ।

निताई हँसकर सर दबाने बैठा। वसन्ती हंसती हुई बोली—'ओह, तुम बहुत अच्छा गाते हो। तुम लिखते भी हो ?'

'हाँ, लेकिन उस गीत को भूल जाऊँगा।'

'क्यों ?' वसन्ती ने आँखें मूँद कर पूछा ।

'वह मेरी भूल थी ।'

वसन्ती ने कोई उत्तर नहीं दिया, सिर्फ तनिक हँसी ।

'और एक नया गीत सुनो ।'
हाय किसने की यह भूल
मह-मह महके; निरख-निरख मन हरखें
काँटों से घिरा यह केवड़े का फूल
पर हाय किसने की यह भूल

वसन्ती के होठों पर शब्द हीन हँसी तड़ित हुई । वह बोली—'इसके बाद ?'

'इसके बाद अभी नहीं बनी है ।'

'यह गीत हमें लिख देना ।'

'मेरा गीत तुम गाओगी ?'

'हाँ ।'

खिड़की के बाहर की ओर देखते हुए निताई ने कहा—'आज शेष कर दूँगा !—कौन है ? कौन ?'

'खिड़की के पास कौन था ?' वसन्ती बोली—'और कौन होगा ! सब आवारें है, आवारें !'

निताई वहां से उठकर झपट पड़ा और खिड़की पर आ खड़ा हुआ, फैली हुई स्वच्छ चाँदनी में उसने देखा कोई रेल की पटरियों को पकड़े बढ़ा चला जा रहा है । द्रुतवेग से काश फूल की तरह अवश्य उसके सर पर स्वर्ण-बिंदु रजर नहीं आता ।

१२

चन्द्रकिरण की रहस्यमय शुभ्रता में वह नवल-धवल रेखा मिल गयी। निताई खोया खोया सा खिड़की पर खड़ा रहा। उसकी आँखों में निरर्थक गम्भीरता है। मन की अस्पष्ट चिंता की तरह अस्पष्ट और क्रमहीन हृदय में एक प्रकार की धड़कन का अनुभव उसे हो रहा था। जैसे वह पत्थर हो गया हो। जैसे विचित्र पृथ्वी असीम वैराग्य से, ज्योत्स्ना के आवरण के कारण निराभरण शुभ्र हो उठी है।

चपल चंचल वासन्ती अस्वस्थ शरीर के होते हुए भी उत्कंठा से उठ बैठी।

जीवन के विषय में उसका ज्ञान जितना जटिल है, उतना कुटिल भी। पथ-भ्रष्टा, नीचे तबके की, तन का सौदा करने वाली का रात की तरह काला ज्ञान। उसके अनुभव के अनुसार हिंसक जानवर की तरह मनुष्य ही संसार में पूरे सोलह नहीं पौने सोलह आने है। उसी अनुभव से सशङ्कित वासन्ती उठ बैठी। जो लोग मकान के दरवाजे पर खड़े होकर काना-फूँसी कर रहे थे वे ही लोग इकट्ठे होकर चुपचाप शरीर लोलुपतावश मकान के चारों ओर चक्कर काट रहे है, उसका ऐसा ख्याल है। वे हमला करने की चेष्टा कर रहे हैं? उत्कंठित स्वर में उसने पूछा—'क्या?'

निताई ने उत्तर दिया—'नहीं', वह जैसे गतिहीन होकर मौन खड़ा था। ठाकुर जी के क्रोध से वह परिचित है। दस कदम चलकर ही वह रुकती है, पीछे मुड़कर देखती है, इशारा करती है—मुझे पुकार लो। आज लेकिन वह नहीं रुकी, चली गयी; इसी रात में अकेले वह चली गयी।

वसन्ती अब उठकर आयी, निताई के पास आकर बुखार से जलती हुई हथेली उसने निताई की कलाई पर रखकर पूछा—'कहाँ है वे लोग ?'

चौंक कर निताई उसकी ओर मुड़ा। रूप और गुणवती के चेहरे पर बड़ी-बड़ी कटीली आँखों में अपरिमेय क्लान्ति और गम्भीर उत्कंठा झलक रही थी ! निताई उसकी ओर देख कर स्नेह कोमल हुए बिना नहीं रह सका। स्नेह से हँसकर वह वसन्ती के सर पर हाथ फेरते हुए बोला—'इतना तेज बुखार ! तुम सो भी रहो। बार-बार उठती क्यों हो ? चलो, सो जाओ ! ओह ! इतना गर्म शरीर, इतना उत्ताप।'

'वे गिद्ध चक्कर लगा रहे हैं शायद चारों ओर ?'

'गिद्ध ?' निताई ने विस्मय से पूछा—वसन्ती की भावना में जो कुछ विचरण कर रहा है, उसकी वह कल्पना भी नहीं कर सका।

वसन्ती ने भ्रू कुंचित किया—तेज कटार की धार जैसे चमकी। उसने पूछा—'तब ? कौन ? कौन गुजरा इधर से ? तुमने देखा क्या ?'

सचकित निताई की समझ में अब बातें आयीं, वह हँसा और बोला—'नहीं, वे नहीं हैं। डर की कोई बात नहीं है। आओ, सो जाओ।'

'कौन इधर से गुजरा ? खिड़की पर कौन था ?'

'मैं पहचान नहीं सका।'

'पहचान नहीं सके ?'

'नहीं।'

'तब इस प्रकार खड़े क्यों रहे ? जैसे तुम्हारा बहुत कुछ बिगड़ गया हो ?'

वसन्ती की चमकती आँखें अन्धकार में जैसे जल रही थीं।

निताई ने कोई उत्तर नहीं दिया। सूखी हँसी हंसता हुआ वह वसन्ती की ओर देखने लगा।

वसन्ती अकस्मात खिल खिला उठी—तीक्षण और तेज हँसी। बोली—'मरो बाबा, ऐसी भी क्या आंखें ! जो खिड़की से गुजरी वह घूँघट वाली थी। मजलिस से ही वह तुम्हारे पीछे-पीछे आयी थी और

हमें देख कर—' इसके बाद पुनः खिलखिला हँसी ।

निताई तलवे से चोटी तक सिहर उठा और वसन्ती हँसने लगी ।

वह कमरे का साँकल खोल कर बाहर निकल गयी ।

निताई ने पुकारा—'ओ, अजी, सुनती हो ।'

दरवाजे के बाहर से आवाज आई—'वसन्ती, नहीं है। वह तो है रसहीन फूल, उससे मत खेलो, काँटे चुभ जायेंगे ।'

निताई भी बाहर निकल आया ।

वसन्ती उस समय कासिम शेख के लड़के से बातें कर रही थी ।

निताई के बुलाने पर वह नहीं आयी । उसे शर्म मालूम हुई । अपने दरवाजे पर ही वह किंकर्तव्य विमूढ़-सा खड़ा रहा । उधर स्टेशन के पास गीत हो रहा था । चाँदनी डालियों से छन कर धरती पर इधर-उधर छिटकी थी । इधर बिल्कुल सुनसान है, चांद बादल के एक टुकड़े से घिर गया है, जिससे अन्धेरा घना हो गया है । ऐसे अन्धेरे में कासिम शेख का लड़का और वसन्ती खो गयी । निताई आकाश की ओर देखता रहा—अकेला खड़ा खड़ा । और फिर वह कुछ गुनगुना उठा । भगवान मनुष्य के हृदय के साथ कितना मजेदार खेल खेलते हैं । होता कुछ है और मनुष्य देखता कुछ है—उसकी छलना कितनी विचित्र है । ठाकुर जी वसन्ती को देखकर चली गयी, वसन्ती ठाकुर जी को देखकर चली गयी और निताई इसी पर गीत गुनगुनाने लगा :—

बाँके बिहारी हरी छलिया है तू :

आज की घटना में उसे नियति या दैव का अद्‌भुत परिहास मिला है । ठीक उसके डोम जाति में जन्म ग्रहण करने की तरह ही यह परिहास निष्ठुर है । इसलिये वह गीत में बिना हरी को स्मरण किये नहीं रह सका ।

सवेरे राजा के शोर गुल से उसकी आंख खुली । वह घर में आकर गीत की कड़ी जोड़ता हुआ सो गया था । उठते ही अधूरे गीत की प्रथम पंक्ति उसके मन में गूँज उठी ।

बांके बिहारी हरी छलिया है तू,
होनहार को तू है टाले,
सम्भव असम्भव कर डाले।
द्रोण की आंखों में अश्रु देखकर,
अर्जुन हुआ भुजंग !
सीता ने देखा, स्वर्ग हरिण-सा अपना ही अंग।

इस गीत को वह अभी पूरा नहीं कर सका—उसे यही बात पहले याद आयी। मगर बाहर से राजा उसे पुकार रहा था। हो सकता है कोई नयी खबर लेकर राजा उसके पास आया हो। अपनी स्वाभाविक हँसी के साथ-साथ उसने दरवाजा खोल दिया। दरवाजे पर राजा खड़ा था, उसके पीछे खड़ी थी—झूमर-दल की प्रौढ़ा। दरवाजे के खुलते ही राजा घर में झपटकर आ गया और चारों ओर आँखें फाड़ कर देखने लगा जैसे वह किसी को ढूँढ़ रहा हो।

निताई ने आश्चर्य से पूछा—'क्या भाई ?'

'कहाँ है, कहाँ है उस्तादिन ?'

'उस्तादिन ?'

राजा, हो हो कर हँस उठा—'सब बिगड़ गया उस्ताद, सब बिगड़ गया। कल रात को वह नौ दो ग्यारह हो गयी'—वह अपने वाक्य पूरा नहीं कर सका।

निताई की समझ में कुछ नहीं आया।

प्रौढ़ा ने समझाया। वह अब तक दरवाजे के बाहर खड़ी थी। अब वह घर में आयी और हँस कर बोली—'हे भगवान् ! अरे वसन्ती ! निकल आ। गाड़ी का समय हो गया रे ! हम लोगों को जाना है न ?'

निताई ने कहा—'वह तो यहां नहीं है।'

'नहीं है ! यह क्या ? वह मजलिस से चली, तुम भी उसके साथ-साथ आये। मैंने तुम्हें कहा भी। इसके बाद मैंने उसे ढूँढ़ा तो पता चला कि वह तुम्हारे घर मे गयी है।'

निताई ने कुछ—'हाँ कुछ लफंगे उसे छेड़ रहे थे—इसी से वह मेरे घर ही आयी। मैंने भी आकर देखा वह सो रही है—बुखार में बुत ! लेकिन थोड़ी देर बाद वह उन्हीं लफंगों के साथ चली गयी।

प्रौढ़ा चिन्तित हुई; राजा की हँसी रुक गयी।'

निताई पुनः बोला—'कासिम शेख के लड़के के साथ वह गयी है। उस बड़ गाछ के नीचे बैठ कर वह बातें कर रही थी। आइये देखें।'

वे उस ओर बढ़ गये।

वह वहीं मिली। वसन्ती वहीं थी। वह अचेत-सी पड़ी थी।

फैले हुए वट वृक्ष की घनी छाया में जमीन पर वह गहरी नींद में सोयी थी। उसकी केशराशि फैली थी अस्त-व्यस्त ! सर्वांग धूल धूसरित मुँह पर कुछ मक्खियाँ भिनभिना रही थीं। उसके पास ही पड़ी थी एक खाली बोतल और एक पत्ता। उसके करीब पहुंचते ही देशी शराब की कड़ी बदबू सभी की नाक में पड़ी।

प्रौढ़ा ने कहा—'यह हराम जादी इसी तरह मरेगी ! वसन्त ! अरी ओ वसन्त !'

राजा हँस कर बोला—'बहुत मतवाली हो गयी है।'

निताई वहाँ से तेज कदमों से चला गया। कुछ ही क्षणों में वह पुनः लौट कर आया—एक कप कुमायित चाय लिये हुए। बिना दूध की चाय-काली। उसमें दो बूंद नीबू का रस। इस प्रकार चाय में नीबू का रस डाल कर पीने से शराब का नशा टूट जाता है। महादेव को उसने अधिक नशा होने पर इसी प्रकार चाय पीते देखा है। वसन्ती उस समय उठ बैठी थी मगर नशे में झूम रही थी। प्रौढ़ा कह रही है, —'अरे, अरे ओ अनोखी, अब मैं क्या करूँ ? करूँ क्या बता तो जरा ?'

'यह चाय पिला दीजिये, नशा अभी काफूर हो जायेगा।'

सचमुच चाय पीकर वसन्ती का मन कुछ ठीक हुआ। इतनी देर बाद नशे में लाल आँखों की भारी पलकों को उभार कर उसने निताई की ओर देखा।

प्रौढ़ा बिगड़ कर बोली—'चल चल, बहुत हुआ ?'

निताई ने कहा—'अभी अगर स्नान करा दिया जाय तो बड़ा अच्छा हो। नशे से चूर शरीर भी हल्का हो जाता और फिर शरीर में धूल भी तो है—'

उसकी यह बात दब गई वसन्ती की खिलखिलाहट पूर्ण हँसी में। वह लड़खड़ाती हुई उठी और निताई के सामने आकर लड़खड़ाते स्वर में बोली—'धूल झाड़ दो न प्यारे! जरा देखूँ मेरे लिये तुम्हें कितना दरद है।'

निताई उसकी नशीली आँखों में आँखें डाल कर हँसा और कन्धे पर पड़े गमछे से वसन्ती के सर्वांग की धूल झाड़ दी फिर बोला—'कहो अब ठीक है न ? अब मैं चला।'

प्रौढ़ा ने पुकारा—'ओ भैया!

निताई मुड़ा।

'मुझे कोई जबाब नहीं दिया तुमने ? अरे, मैंने कहा न, मेरे साथ मेरे दल में आ जाओ ?'

निताई के उत्तर देने के पहले ही नशे में उन्मत्त छोकरी हँसने लगी जैसे उसकी यह हँसी अब रुक नहीं सकती।'

झुँझला कर प्रौढ़ा ने कहा—'ओ हो हो, वाहरे तेरी हँसी ? आग लगे ऐसी हँसी में!'

हँसते हुए ही वसन्ती ने किसी तरह कहा—'अरी, अरी ओ मौसी, यह काला कलूटा कालू मन बसिया है। कल रात को—ही, ही, ही,—ही ही ही,—ही, ही, ही,—'

इस बार राजा झुंझला उठा। उस छोकरी पर बिगड़ उठा—'क्यों ऐसे हीं, हीं, हीं करती है ?'

वसन्ती की दोनों आंखें आग उगलने लगीं। मगर फौरन ही वह पुनः हँसने लगी—'ही ही ही,—ही ही ही—'

इधर स्टेशन की घण्टी बजी। स्टेशन मास्टर स्वयं घण्टी बजा रहे थे और पुकार रहे थे—'राजा, राजा कहाँ मर गया रे!'

राजा दौड़ पड़ा—कहीं आज वारा न्यारा न हो जाये!

निताई हँस कर बोला—'अच्छा चलिये भी तो।'

और साथ-साथ वह अपने घर की ओर चल पड़ा।

प्रौढ़ा इस बार कड़े स्वर में बोली—'वसन्त, चलती है या यहीं रहेंगी?'

वसन्ती शिथिल कदमों से चलने लगी। मगर उसकी हँसी अब तक नहीं रुकी थी।

अचानक मुड़ कर हाथ हिला कर वह चिल्ला उठी—'चली, मै तो चली।'

× × × ×

निताई आ बैठा कदम्ब के वृक्ष के नीचे। कल रात के अधूरे गीत को वह पूरा करने की चेष्टा करने लगा।

तेरा रूप धूप-सा चमके

इसके आगे? उसे कुछ सूझता नहीं। 'नमित होती नयन'—यह पंक्ति कई बार उसके मन में आयी मगर मन भरता नहीं—'तो चरणों में लिया शरण आके।'—यह भी ठीक नहीं।

ट्रेन भयंकर ध्वनि के साथ स्टेशन पार कर रही है। एक डब्बे में झूमर के दल के लोग दीख पड़े। वसन्ती दरवाजे के पास ही खिड़की पर सर लुढ़काये बैठी है। अजीब छोकरी है! निताई हँसा। झूमर उसने बहुत देखे हैं, ऐसे लोगों के साथ मिलने-जुलने का उसे मौका भी मिला है लेकिन इतनी कठोर और लूटने वाली छो करी उसने नहीं देखी। फिर भी, उस छोकरी में कुछ गुण भी है और रूप भी। कल रात का गीत उसे याद आया—

हाय किसने की यह भूल
महू महू महके, निरख निरख मनहरखे
पर काँटों से घिरा यह केवड़े का फूल

गाड़ी चली गयी। निताई देखता रहा। उसे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे रेल की समानान्तर दो पटरियां मुड़ कर क्षितिज में जा मिली है। वसन्ती चली गयी, और हो सकता है वह कभी न मिले। वसन्त! क्षण क्षण में उसका रूप बदलता था। एक ही रात में तीन तीन गीतों की वह प्रेरणा बनी? वह कुछ उदास हो उठा। अकस्मात अपनी मोह भंगिमा को गर्दन हिलाकर उसने दूर कर दिया। वहीं, एक समय स्वर्ण बिन्दु चमक उठेगा, इसके बाद दीख पड़ेगी उस स्वर्ण बिन्दु के नीचे एक शून्य रेखा। स्वर्ण बिन्दु से विकीर्ण ज्योति आंखों को चौंधिया देगी। अधूरा गीत—अधूरा ही रह गया। राह पर पलकें बिछाये निताई बैठा रहा।

कहाँ?

वह क्या है? ऊंहूं, वह नहीं है। यह निताई के मन का भ्रम है। कल्पना—मृग मरिचिका की तरह रह रह कर स्पष्ट हो रही है। निताई हँसा। अभी तो कुल दस ही बजा है और ठाकुर जी आती है बारह बजे आने वाली गाड़ी के पहले, ठीक घड़ी की सुई की तरह।

वृक्ष से उठ कर निताई ने सोने की चेष्टा की। आज समय जैसे गुजरना ही नहीं चाहता.।

वही, हाँ वही आ रही है। चलती हुई एक रेखा के सर पर स्वर्णाभ, एक बिन्दु। लेकिन नहीं, वह नहीं हैं, उस रेखा की चाल तो वैसी नहीं हैं और रेखा भी वैसी लम्बी और तरंगित नहीं है।

और और एक रेखा, यह भी नहीं।

निताई ने भूल नहीं की। रेखा ज्यों ज्यों पास आती गयी, त्यों त्यों एक नारी रूप स्पष्ट और स्पष्ट हुई, मगर उनमें ठाकुर जी नहीं थीं। ये लड़कियाँ भी गाँव में दूध बेचने आती हैं। एक एक करके वे सभी चली गयीं। लेकिन ठाकुर जी कहाँ रह गयी?

बारह बजे की गाड़ी भी चली गयी।

राजा आया—'उस्ताद!'

चौंक क निताई ने हँस कर कहा—'हाँ राजन!'

'किस ध्यान में हो भाई, यहाँ क्यों बैठे हो।'

उत्तर में निताई केवल यों ही हँसने लगा।

'तुम से मैं नाराज हो जाऊँगा।'

'क्यों राजन, क्यों? मैंने क्या अपराध किया है भाई?'

'वह झूमर वाली क्या कह गयी, यही, यह दिल बसिया है।'

निताई हँसने लगा, 'ह हा' कर। इसके बाद राजा का हाथ पकड़ कर बोला—'चलो चाय पीकर आयें। आज मैंने चाय भी नहीं पी है, ठाकुर जी आज दूध लेकर नहीं आयी। झूमर वाली की बात पर तुम विश्वास करते हो? अरे मेरे लिये तो मन बसिया हो तुम!'

'हम?' राजा की विकट हँसी वातावरण में गूँजने लगी। वह उससे लिपट गया। बोला—मुझे चूम लो उस्ताद! फिर उसकी पूर्ववत हँसी कौंधी—'चूम लो!'

१३

एक दिन, दो दिन, तीन दिन!

ठाकुर जी नहीं आयी। चौथे दिन आकुल व्याकुल होकर निताई ने यह तय किया कि आज अगर ठाकुर जी नहीं आयी तो वह उसके घर जायेगा, जरूर!'

बारह बजे वाली गाड़ी और चली गयी, उस दिन भी ठाकुर जी नहीं आयी। अन्य औरतें, जो दूध देने आती है वे आयीं और अपना

अपना काम कर लौट गयीं। निताई की इच्छा बार-बार हुई कि वह उन औरतों से उसके विषय में पूछ-ताछ करे, लेकिन यह भी उससे नहीं हुआ। उसे शर्म मालुम हुई। स्वयं वह आश्चर्य में पड़ गया। बार बार उसके मन ने कहा—शर्म कैसी? फिर भी वह शर्म से छुटकारा नहीं पा सका। चुपचाप अपने घर में बैठा रहा। सोचता रहा—किस भरोसे वह ठाकुर जी की सुसराल के दरवाजे पर वह जाय? बहुत सोच विचार के बाद उसने तय किया कि वहां वह मुर्गी या अण्डे खरीदने का बहाना बना कर पहुँच जाय। ठाकुर जी के श्वसुर बत्तख और मुर्गी पालते हैं, वह यह जानता था। अपने घर की मामूली से मामूली बातें भी ठाकुर जी ने उसे बता दी हैं। वहाँ दीवाल में कहाँ एक सुई गड़ी है, निताई उसे भी आँखें बन्द कर निकाल सकता है।

'उस्ताद घर में हो?' राजा कीआवाज है यह।

निताई आश्चर्य में डूब गया। राजन अपनी परिष्कृत हिन्दी में बोल रहा था। इसलिये उसने कहा—'आओ आओ महाराज! क्या खबर है?'

राजा आया और उसने खबर दी—'खबर बहुत खराब है उस्ताद! ठाकुर जी ने तो एक मुश्किल पैदा करदी है भाई।'

निताई का हृदय धक से रह गया—वह कोई प्रश्न नहीं कर सका चिन्तित और गम्भीर होकर राजा की ओर देखता रहा!

'आज करीब तीन दिन हुए उसे जाने क्या हो गया है, इतनी अच्छी लड़की और वह सास, ससुर, ननद सभी से खूब लड़-झगड़ रही है। सर पीटती है, और पैर पटकती है। कल रात से वह अचेत पड़ी है, दाँत लग रहे हैं और उसके हाथ पैर लकड़ी की तरह हो गये हैं।'

निताई का हृदय व्याकुलता से धड़कने लगा। उसने राजा को दोनों हाथों से झपट कर पकड़ लिया और बोला—'उसे देखने जाओगे राजन?'

राजा ने कहा—'घरवाली गई है देखने, वह लौट आये। हम लोग

शाम को चलेंगे।'

निताई की आँखें भर आयी थीं। वह सर गाड़कर बैठ रहा।

राजा एक दीर्घ निश्वास फेंककर बोला—'ओह, ठाकुर जी का पति बहुत बेजार हो उठा है रोता है। बचपन में ही ब्याह हुआ। इस लिये वश में हो गया है बेचारा।' राजा के सूखे मुख-मंडल पर म्लान हँसी की रेखायें खिच आयी।

अब निताई की आँखों से दो बूँद आँसू टपक पड़े—टप-टप! उसने अब फौरन ही अपनी अँगुली से आँसू की बूँदों को पोंछ डाला। और कई क्षण बाद वह गहरी सांस खींचकर पुकार उठा—'राजन!'

'उस्ताद!'

'डाक्टर, वैद्य किसी को दिखाया गया है या नहीं?'

निराशा से दोनों होठों को टेढ़ा कर राजा बोला—'इसमें डाक्टर और वैद्य क्या कर सकता है भला। यह तो तुम्हारी आग है, नहीं तो भूत-प्रेत का या किसी बदमाश आदमी का कुछ किया हुआ है।'

यह बात निताई के हृदय पर जम गई। वह सोचने लगा तो क्या यह उस छोकरी का काम है, झूमर दल की छोकरी का! वे तो बहुत-सी विद्या जानती है, वशीकरण मंत्र तो उनकी बोली में है।

राजा ने कहा—'काली माता के सामने आज उसे खड़ा किया जायेगा। बात-वृतांत क्या है यह आज ही पता चल जायेगा।'

कुछ देर और वहाँ राजा बैठा रहा। इसके बाद वहाँ से उठा। निताई का हाथ पकड़ कर खींचते हुए उसने कहा—'आओ भाई, चाय पीयें।'

बहुत देर बाद निताई सहज और सरल सरल भाव से उठ खड़ा हुआ।

× × × ×

राजा के घर में निताई बैठा रहा। राजा की पत्नी वहाँ की खबरें लेकर लौटेगी, इसी अप्रत्याशित उत्कंठा में आकुल व्याकुल वह बैठा

रहा। राजा, राजा है। दुःख, कष्ट, शोक, संताप सभी स्थितियों में वह राजा है। वह बाजार से खरीद कर ले आया है—गरम पकौड़ियाँ और जलेबियाँ।

निताई बोला—यह सब क्या ले आये हो? इस वक्त उसे कुछ अच्छा नहीं लग रहा था।

'खाओ, खाना तो पड़ेगा ही भाई, पेट साला तो नहीं मानेगा।' वह बोला—'खाओ' इसके बाद वह आवाज लगाने लगा—'अरे बच्चों ओ बेटा आओ, आओ खाओ।'

वह पुकार रहा था अपने बेटे को। उसके बेटे को आदत ठीक पुराने जमाने के युवराजों की-सी है। दिन रात वह गुलेल हाथ में लिये मैदानों में दौड़ता रहता है: तीतर, बटेर, कौआ जिसे देखता उसे ही अपना निशाना बनाता। जान पड़ता है आज वह कहीं दूर निकल गया है क्योंकि कोई उत्तर नहीं मिला। तब राजा बिगड़कर चिल्ला उठा—'ओरे, सूअर का बच्चा, हराम जादा······।'

इतने पर भी कोई उत्तर नहीं मिला। राजा ने निताई से कहा—'किधर चला गया उस्ताद।'—पुन. वह हँसा—'क्या कहते हो तुम, वहीं, तिपान्तर के मैदान के उधर—जादूगरनी है या क्या?'

और रोज राजा के इस प्रकार चिल्लाने पर निताई कहता था कि राजकुमार जादूगरनी की तितलियों के पीछे उसके देश की ओर चला गया है। राजन!

लेकिन आज उसे यह भी अच्छा नहीं लगा। केवल उसने राजा का मन रखने के लिये जरा हँस दिया।

राजा ने भी इसके बाद अपने लड़के की खोज नहीं की। दो तश्तरियों में पकौड़ियों और जलेबियों को रखकर एक निताई की ओर बढ़ा दी और एक आप ले बैठा। बोला—'जाने दो उस सूअर के बच्चे को। उसके नसीब में भगवान ने खाना-पीना नहीं लिखा है। हम क्या करें?'

निताई चुप रहा। वह सोच रहा। ठाकुर जी की बातें। उसके सामने के मैदान में फैली हुई घास पीली पड़ गयी है, उसी की प्रतिच्छटा में धूप किरण भी पीली हो उठी हैं। जमीन और आसमान के मध्य में गोधूलि के आवरण चढ़े हुए है। जैसे निताई अपने चारों ओर काश फूल की तरंगित लहरियों में हिमकिरीटनी के मस्तिष्क पर शोभित स्वर्ण बिन्दु देख रहा था। किसी ओर भी कुछ क्षण निर्निमेष देखते रहने पर उसे दीख पड़ता धूल धूसरित दिगन्त में झूल रहे है, काश फूल और जिसकी शोभा को बढ़ा रहा है उसकी फुनगी पर जड़ा स्वर्ण बिन्दु !

राजा अपने हिस्से का सभी कुछ खा चुका था। उसने निताई से कहा—'अरे भाई, खालो।'

निताई ने गर्दन हिलाकर उत्तर दिया—'नहीं।'

'अरे छोड़ो भी, खालो। पेट में जायेगा तो फायदा करेगा। तबियत चंगी हो जायेगी।'

'तबियत ठीक हैं राजन ? लेकिन मुझसे खाया नहीं जायेगा।'

'क्यों, क्यों खाया नहीं जायेगा भाई।'

अचानक राजा के दोनों हाथों को निताई ने पकड़ लिया—'उस दिन तुमने पूछा था मेरे मन मन्दिर की देवी कौन है ?

'हां पूछा था' राजा ने निताई को नहीं समझा। वह उसकी ओर देखता रहा।

'राजन जानते हो, मेरे मन-मन्दिर की देवी है वही ठाकुर जी ! ठाकुर जी मेरी कविता है।' निताई की आँखों से अश्रुधार फूट पड़ी। राजा भौंचक्का सा कवि की ओर देखता रहा। कोई और समय होता तो वह अपने विकट हास्य से सारी पृथ्वी को यह सुना देता। लेकिन आज ठाकुर जी के लिये अपने पीड़ित हृदय के कारण वह गम्भीर हो गया। दोनों मौन बैठे रहे।

कुछ देर बाद स्वभाव के अनुसार चिल्लाती हुई राजा की पत्नी

ने कमरे में प्रवेश किया।

एक ही स्वर में बहुत सी बातें पूछने के लिए प्रस्तुत निताई जब उसके सम्मुख खड़ा हुआ तब उसके मुँह से निकला केवल एक शब्द 'क्या हुआ ?'

राजा की पत्नी जैसे राख में दबी हुई आग की चिनगारी की तरह फट पड़ी—'भूत-प्रेत, बदमाश !'

इसके बाद उसने निताई को अश्लील और भद्दे विशेषणों से जार-जार कर दिया।

निताई की ओर अँगुली उठाकर उसने कहा—'तू, तू, तू ? तूने ही उस अबोध बच्ची को इस अवस्था में डाला ! तू ऐसा है—लोभी कुत्ता ? तेरे मन में इतना पाप ?'

आज ठाकुर जी को कालीमाता के सामने खड़ा किया गया था। सवेरे से उसे उपवास कराया गया। दोपहर को एक मंत्रपूत पिण्ड पर उसे खड़ा करके उसके चारों ओर धूप-धुआँ देकर काली माता की सेविका ने अपने हाथ में झाड़ू लेकर उससे पूछा—'काली, कराली, नर मुण्ड धारिणी ! भूत, प्रेत, डाकिनी, चुड़ैल, पिशाच जिसने इसे छूआ है माता उसे तुम यहाँ हाजिर करो। उसके खून से तुम अपना खप्पर भरो माँ !'

ठाकुर जी थर-थर काँपने लगी थी।

'बोल, बोल, किसने तेरी यह दशा की ? दोहाई माँ काली की !'

ठाकुर जी ने फिर भी कुछ नहीं कहा, केवल पगली की तरह आँखें फाड़-फाड़ कर देखती रही और काँपती रही। तब गरज गरज कर सेविका ने मन्त्र उच्चारण किया, और ठाकुर जी को झाड़ू से पीटने लगी, तब अधीर होकर ठाकुर जी ने कहा था—'मैं बताती

हूँ, बताती हूँ।'

उसने निताई का नाम बताया था—'उस्ताद, कवि ने मुझे लाल फूल दिया। इसके बाद वह गीत गाने लगा था—काली वेणी में लाल फूल नयनों को कितना भाता—'

राजा की पत्नी को पुरानी बातें याद आयीं—जो कुछ उसने, एक दिन निताई की खिड़की से देखा था—निताई ने ठाकुर जी की वेणी में फूल सँजोया था। उसने अपनी बहन का समर्थन कर सभी को कह दिया और अन्त में उसने निताई को गालियां दीं—भोंडी—भद्दी गालियाँ !

कोई और दिन होता तो राजा, उसके झोंटों को पकड़ कर धरती पर लुटा देता और लातों से उसे ठंडा कर देता। आज लेकिन वह भी जैसे पंगु हो गया है।

निताई सर नीचे किये बैठा था, वह उसी प्रकार बैठा रहा। गाली गलोज और श्राप, खासकर ठाकुरजी ने जो कुछ कहा है उसे सुनकर वह पत्थर हो गया था।

उसे राजा ने वहां से उठाया। इधर ट्रेन की घन्टी पड़ गयी है। राजा को स्टेशन जाना होगा। निताई वहां से उठकर आ बैठा कदम्ब की छांव में। उदासीन और शून्य निताई सोच रहा था—वह क्या करे ? कहाँ जाये, जहाँ उसे इस लज्जा से छुटकारा मिले, कहाँ उसके जीवन को शान्ति मिल सकती है ?

इसी समय एक आदमी आ खड़ा हुआ उसके सामने 'यह रहे उस्ताद !'

निताई ने उसकी ओर गर्दन उठाकर देखा और उसके मुर्झाये चेहरे पर हरियाली दौड़ गयी—'तुम, ? इसी गाड़ी से…………? ओ, आओ आओ, तुम्हारी बात ही सोच रहा था।'

हेमन्त की धूमर संध्या। संध्या के घने अन्धेरे में गाँव धुआँ और धूसरित! राजा सिगनल डाउन कर नीली बत्ती हाथ में लिये लाइन के पास खड़ा है और अन्धकार में चुपचाप वहाँ आ खड़ा हुआ निताई!

'राजन!'

राजा ने मुड़कर देखा--निताई, उसके पैर में जूता, कन्धे पर चादर-कुर्ता और बगल में है एक पोटली।

राजा ने आश्चर्य से पूछा—'कहाँ चले उस्ताद?'

उसकी हथेली पर पाँच रुपये रख कर निताई ने कहा—'दूध का बकाया रुपया ठाकुर जी को चुका देना।'

राजा बुदबुदाया—'उस्ताद चमार का काम करेगा? चमार हो जायेगा?'

निताई ने विस्मय से राजा की ओर देखा।

'ठाकुर जी का ब्याह हम छुड़ा देंगे, तुम्हारे साथ उसकी शादी होगी।'

निताई कई क्षण जमीन निहारता रहा। इसके बाद गर्दन ऊपर उठाकर उसने सिर्फ कहा—'छि:!'

'किसी का घर बिगाड़ना ठीक नहीं है राजन?'

'छि: क्यों?'

राजा एक गम्भीर निश्वास छोड़कर चुप रहा।

निताई ने कहा—'तुम यकीन करो राजन, मैं सिर्फ कविता करता हूँ, तंत्र-मंत्र कुछ नहीं किया। मगर हाँ, कुछ-कुछ हो गया था। लेकिन ठाकुर जी को मैंने नष्ट नहीं किया है।'

सन्ध्या के अन्धेरे को चीर कर आड़ी-टेढ़ी रेल की पटरियों पर नाचती हुई ट्रेन की सर्च लाइट की रोशनी धीरे-धीरे नजदीक आ रही है। अब कहीं इस रोशनी में राजन ने निताई को देखा, उसकी वेश-भूषा को निरखा और उसके बगल की पोटली पर उसकी दृष्टि गयी और उसने कहा—'तुम, तुम कहाँ जाओगे उस्ताद!'

उधर ट्रेन नजदीक आ गयी थी। उसकी ध्वनि आ रही थी। यह ध्वनि देखते ही देखते वहाँ के वातावरण में कौंध गयी। इस भयंकर ध्वनि में राजा यह नहीं समझ सका कि निताई ने उसके प्रश्न के उत्तर में क्या कहा। गाड़ी प्लेट फार्म में प्रवेश कर चुकी थी इसलिये वह प्वाँट छोड़कर प्लेट फार्म पर आ गया।

'उस्ताद, उस्ताद!'

डब्बे के अन्दर से गर्दन निकाल कर निताई ने उत्तर दिया—'राजन!'

'कहाँ जाओगे भाई?'

स्वाभाविक हँसी हंसकर निताई ने उसके प्रश्न का उत्तर दिया—'बयाना मिला है भाई, अलीपुर के मेले में कवि दरबार है।'

अलीपुर में एक मेला लगा है। मगर यह बयाना आया कब? राजा को आश्चर्य हुआ और साथ ही सन्देह भी! ठाकुर जी के दूध के बकाया रुपये चुकाकर वह कवि दरबार को चला जा रहा है! झूठ, बिल्कुल झूठ! उसने कहा—'गलत बात है!'

'नहीं राजन! यह देखो, ये लेने आये हैं।'

राजा ने देखा, उसके साथ बैठा है झूमर दल का एक आदमी। दल की मालकिन प्रौढ़ा ने इसी के हाथ बयाना भेजा है।

निताई बोला—'अलीपुर, अलीपुर से कान्द्रा वहां से कटुआ, कटुआ से अगु दीप, अगुदीप से—'

ट्रेन की भयंकर ध्वनि ने उसकी उल्लासपूर्ण बातों को ढँक दिया।

ट्रेन चलने लगी। राजा ने ट्रेन के साथ दौड़ते हुए पूछा—'अगुद्वीप से कहाँ? क्या तुम्हें सारी दुनिया के लिये बयाना आया है? उतरो उस्ताद, लौट आओ।'

राजा के करुण कण्ठ स्वर ने निताई को एक मुहूर्त के लिये विचलित कर दिया। मगर वह आत्म संवरण कर हँसने लगा। अपने मन में ही बोला—'हाँ, दुनिया भर के लिये बयाना आया है राजन।'

इसी बीच ट्रेन प्लेट फार्म से बाहर निकल गयी और उसकी रफ्तार तेज होगयी।

१४

ट्रेन दक्षिण दिशा की ओर चली जा रही थी। खिड़कियों से पीछे की ओर भागते हुए मैदान, वृक्षों के झुरमुट और चतुर्दशी के उगते चाँद की मधुर रश्मियाँ। आकाश पर बदली की झीनी चादर पड़ रही हो जैसे। कुहासे की झीनी चादर में मुँह छिपाये चाँद की आभा बिल्कुल केशर की तरह हो उठी है। जैसे चाँद अपने मुँह पर हल्दी लगाकर व्याह करने चला हो। निताई मुग्ध दृष्टि से चाँद को निहार रहा था। छोटी लाइन पर चलने वाली गाड़ियाँ खूब झकोरे खाती हैं, और उसकी ध्वनि भी होती है बड़ी लाइन की गाड़ियों से अधिक तेज; सूने कुएँ की तरह! जो आदमी निताई को लेने आया था, वह झूमर दल का एक बाजा बजाने वाला है। वह कुछ नशे में मस्त था, इसलिये ट्रेन के हिलने डुलने और भयंकर शब्द ध्वनि से झुँझलाकर बोला—'उस्ताद यह तो झपताला शुरू हो गया।'

वह ट्रेन की ध्वनि से ताल मिलाकर बेंच पर हाथ पटकने लगा। उसकी देखा देखी उस ओर बैठे दो छोटे बच्चे भी तालियाँ पीटने लगे। एक ने कहा—छक छका छक्! ताक धिना धिन!

निताई का ध्यान उधर नहीं गया। वह चाँद की ओर देखकर सोच रहा था—ठाकुरजी की बातें, राजन की बातें, राजकुमार की बातें। अब उसे एक-एक कर सब की याद आयी। वह बनिया मामा वह विप्रदास और कदम्ब के वृक्ष, स्टेशन की बात! रह रहकर उसकी

इच्छा होती कि अगले स्टेशन पर वह उतर जाये और लौट जाये। लेकिन वह ऐसा नहीं कर सका। अचानक एक समय उसे ऐसा अनुभव हुआ कि उसकी आँखें डबडबा आयी हैं। उसने अपनी आँखों को पोंछ लिया और सजग होकर बैठ गया। दो-एक मिनट तक पुनः चुपचाप बैठा रहकर वह गुनगुनाने लगा—

चाँद निहारू मैं केवल, चमको तुम तारों के संग
स्वर्ण अंग है तेरा न्यारा, कलिख से सना है हाथ हमारा
छूने को मन चाहे जितना, छू ऊँ नहीं मैं तेरा अंग
चाँद रहो तारों के संग

गीत सुन कर वह बाजा बजाने वाला नशे में होते हुए भी सम्भल कर बैठ गया—'अरे वाह उस्ताद। क्या गला पाया है।' इतना कह कर वह बेंच पर ही ताल तोड़ने लगा—'हुई,—ता-तकर-ता-ता—।'

और निताई ने अपनी धुन बदल दी। आज उसका मन भावों से भर उठा है। अपने आप ही स्वर के साथ-साथ गीत फूटे पड़ रहे हैं। वह उसके आगे की पंक्ति गुनगुनाने लगा।

नहीं नहीं, मैं नहीं निहारू तुमको
नहीं जानता था मेरी दृष्टि में है भरा जहर
नहीं चाहता, गिरे अरे तुझ पर विपदा के कहर
इसलिये मैं नहीं निहारूँ तेरा अंग
तुम चमको तारों के संग।

स्टेशन के बाद स्टेशनों का अतिक्रमण करती हुई गाड़ी चली जा रही है। निताई नये गीत गाता जा रहा है फिर भी उसे शान्ति नहीं मिल रही है।

एक खट-खट शब्द के साथ गाड़ी एक स्टेशन पर आ रुकी। स्टेशन पर जमादार चिल्ला रहा है—कान्दरा, रायजीवन पुरा—

बाजे वाले ने खिड़की से गर्दन निकालकर देखा फिर बोला—'वे लोग आ रहे हैं, उतरो, उतरो उस्ताद।'

निताई उतरा, लेकिन वह गाता रहा। गला मध्यम कर धीरे-धीरे, स्टेशन से नीचे उतर गया, गाते हुए—

तो चला यहाँ से वहाँ, जहाँ पर नहीं छटा तेरी हो
हो चारों तरफ अंधेरा, छूटे मेरा तुझ से संग
मेरे चाँद रहो तारों के संग।

स्टेशन से करीब दो मील तक पैदल चलने पर उसके मन की उदासीनता कम हो गयी। रास पूर्णिमा के अवसर पर लगने वाले अलीपुर के मेले की शोहरत चारों तरफ थी। इतनी शोहरत कि लोगों का आना-जाना कम नहीं होता। दो मील दूर पर लगे मेले में चतुर्दशी के चाँद की चाँदनी छिटकी थी। इसके पहले भी निताई इस मेले में दर्शक के रूप में आया था। केवल प्रकाश, प्रकाश और प्रकाश की छटा। इस प्रकाश की छटा में झकमकाती हुई हर वस्तु की कतार से—नयी दुल्हन या मन हरने वाली नायिकाओं की तरह सजी-सँवरी दूकानें और इधर उधर, चारों तरफ सिर्फ आनन्द विभोर मनुष्य ! मेले में हर तरफ तरह-तरह के मनोरंजन का भी इन्तजाम किया गया है। यात्री, नौटंकी, रामलीला, झूमर तथा कवि दरबार ! इन्हीं एक में उसे गाना पड़ेगा अपनी कविताओं को। कवि और झूमर दोनों एक में मिलकर आज ऐसा समा बांध देंगे कि लोग कभी भूल न सकें। उसके साथ आने वाले ने कहा है कि आज निताई ही मुखिया है, उसे ही मुख्य रूप से गाना पड़ेगा। जो आदमी पहले इस दल में गाता था, वह वसन्ती से लड़-झगड़कर अपनी प्रियतमा को साथ लेकर एक दूसरे दल में जा मिला है। उसका गला चौपट हो गया है। वह शराब भी खूब पीता था और गीत बाँधने की क्षमता भी उसी प्रकार कम नहीं थी। कल, कल ही तो एक गीत के स्वर बाँधते समय वसंती से

झगड़ा हुआ। दोनो ही उस समय नशे में थे। अंत में उसने वसन्ती को एक भद्दी गाली दी और वसन्ती ने उसे झाड़ू से पीटा। इसीलिये वह अपनी प्रेमिका को लेकर वहाँ से उड़ गया। कोई रास्ता-न देख कर दल की मालकिन प्रौढ़ा ने निताई को याद किया है। दल का मान सम्मान सब कुछ निताई के हाथ है। इसी खुशी में मन-ही-मन एक बहुत बढ़िया टेक पकड़े निताई राह पर बढ़ता जा रहा था। उसकी आँखें टिकीं थीं उस आलोकोज्वल आकाश की ओर। ठाकुर जी, राजन, राजकुमार, कदम्ब के वृक्ष, सभी कुछ पीछे के अंधेरे में ढँक गये हैं। वह जैसे-जैसे आगे बढ़ रहा है, वैसे वैसे पीछे का अंधेरा घना होता जा रहा है।

उसके मन को खींच रहा था—मेला और मेले में लगने वाला कवि दरबार! ठाकुर जी की समस्त चिन्ताओं ने उसके हृदय की व्यथा को ढँक लिया था और विषाद की जगह उसके हृदय में विजय की एक उत्कंठा उत्पन्न हो रही थी। आज वह कवि के रूप में दरबार के मंच को सुशोभित करेगा। चण्डी माता के मेले में उसकी भिड़न्त महादेव से थी। मगर वह कहाँ और यह कहाँ? आज वह सचमुच एक कवि है। ऐसा सुअवसर उसे कभी मिलेगा, यह उसकी कल्पना के परे की बात थी।

वह गायगा और वसंती नाचेगी। दूसरी और लड़कियों को वह नाचने नहीं देगा। इन्हीं कल्पनाओं में उसका मन उलझा था कि उस के मन में एक नयी पंक्ति गूँजी है। भाव भी बड़े अनोखे हैं अर्थात् गोकुल की कालिन्दी के काले जल में स्वर्ण कमल तैर रहा है, उसे छूना ठीक नही, क्योंकि उसके हाथ में कालिख लगी है।

साथ ही साथ वह स्वर-संयोग भी करता जा रहा था।

उसके विरोधी दल का कवि बड़ा रंग बाज है। शुरु से ही वह रंग बांधता है और अंत तक उसी चक्र में बड़े से बड़े कवि को छूमन्तर कर देता है। निताई किसी भी तरह उसे यह मौका नहीं देगा। दुनिया

के लोग सिर्फ शराब की मस्ती में ही खोये रहना चाहते हैं, दूध से अरुचि रहती है—इस पर निताई को विश्वास नहीं होता। आज वह यह भी देख लेगा।

अचानक वह एक आदमी से टकरा गया और खड़ा हो गया। वह मेले के बहुत करीब आ गया है। रास्ते में आने जाने वालों की भीड़ बढ़ गयी है। कविता की पंक्ति में उलझा हुआ वह तेजी से बढ़ा जा रहा था, अचानक वह किसी से टकरा गया। वह आदमी बिगड़ कर बोला—'अन्धे हो क्या ? दौड़े चले जा रहे हो।'

निताई करबद्ध होकर बोला—'भूल हो गयी—माफ कर दीजिये।'

वह आदमी थोड़ा शान्त होकर बोला—'ओः बड़ी जोर से चोट लगी।'

इस पर निताई ने कहा—'तो दोष केवल मेरा ही नहीं, जरा सोच विचार कर देखें।'

वह आदमी हँस पड़ा।

इस अन्धेरी चौमुहानी के पास से मुड़ने पर ही मेला लगा है। मेले मे एक ओर एक वृक्ष के नीचे टट्टी की दीवाल खड़ी कर घर बनाये गये हैं उसी में झूमर का दल पड़ाव डाले है। अगल-बगल और कई झूमर दल बसे हैं। इसके बाद ही एक खुले मैदान में वेश्याओं का पड़ाव है। आनन्द में उन्मत जनता के शोर गुल के कारण निताई की दो पंक्तियां खो गयीं।

प्रौढ़ा वृक्ष के नीचे बैठी लालटेन की रोशनी में सुपारी काट रही थी। दो-एक औरतें रसोई बनाने में व्यस्त थीं। एक डेरे में बत्ती जल रही थी, वहां मर्द और औरतों की हँसी गूँज रही थी। उस गूँजती हँसी में से वह एक हँसी पहचानता है—बसंती की हँसी। इस तरह तार-तार खिलखिल हँसी सिवा बसंती के और कोई हँस नहीं सकता। झूमर दल की कोई भी लड़की नहीं हँस सकती।

निताई को देख कर प्रौढ़ा आनंद में विभोर हो उठी—'आओ आओ भइये। मैं तुम्हारी बाट ही जोह रही हूँ।'

खाना बनाने में जुटी दोनों छोकरियां भी काम धाम छोड़ कर वहां आ खड़ी हुईं और उनमें से एकने हँसते हुए कहा—'आ गया है री !'

निताई भी हँसकर बोला—'आ गया हूँ।'

प्रौढ़ा ने कहा—'अरी ओ भइया के लिया चाय बना। हाथ मुँह धोलो भइये !'

एक छोकरी ने कहा—'अच्छी तरह से गाना होगा लेकिन।'

दूसरी लड़की वहाँ से दौड़ी गयी बगल की झोपड़ी की ओर। दरवाजे पर खड़ी होकर ही उसने—'ओ, ओ बसन कवि आया है री ! तेरा श्याम सलोना !'

निताई ने हँसकर संशोधन किया—'श्याम सलोना नहीं, काला कलूटा।'

बसंती झोपड़ी से बाहर निकल आयी—उसके पैर लड़खड़ा रहे हैं। बड़ी-बड़ी आँखों की पुतलियां भारी प्रतीत हो रही हैं। नाक चिबुक तथा कपोलों पर पसीने की नन्हीं नन्हीं बूँदे मोती की तरह चमक रही है। वह निकट आकर निताई का हाथ पकड़ कर बोली—'नहीं, तुम ही मेरे श्याम सलोने। तुमने मेरा मान रख लिया— सूखे दरिया में पानी ला दिया है तुमने —तो, तुम मेरे श्याम सलोने हो !'

नशे में स्वर थोड़ा लड़खड़ा जाता है। मगर उसकी जुबान अधिक लड़खड़ा रही है, कुछ तो नशे में और कुछ खुशी में।

प्रौढ़ा ने रहस्य जाल बुन कर कहा—'इसका मतलब यह नहीं की तू रोने लग बसन, नशे में।'

नशे में अर्धोन्मिलन दोनों पलकों को उभार कर कई क्षण तक प्रौढ़ा की ओर वह देखती रही, इसके बाद बोली—'जरूर रोऊंगी, अपने श्याम सलोने से लिपट कर रोऊँगी, कौन है इसके सिवा और जो मुझे प्यार से चाय बना कर पिलाता है ? मेरे देह की धूल झाड़ता है,

कौन है और ? आज सारी रात रोऊँगी, रोऊँगी'–यह कहते कहते वह अपने डेरे के दरवाजे पर आकर कमरे में बैठे लोगों से बोली—'ऐ भड़ुओं, तुम लोग जाओ, चले जाओ। अब मौज नहीं होगी।'

प्रौढ़ा अति व्यस्त होकर बोली—'ऐ वसन, वसन ! छीः छीः ! यह क्या कर रही हो ? ये लोग हम लोगों के लिये देवता हैं, इन्हें अपने घर से निकालना लक्ष्मी को निकालना है।'

वसंती प्रौढ़ा की ओर टकटक देखती रही। पुनः सिसकियाँ भरने लगी और फिर फूटकर रोने लगी और अति दीन भाव में अवरूद्ध कंठ से कहने लगी—'मैं रो भी नहीं सकती मौसी ! मुझे रोने का भी अधिकार नहीं है !'

अब निताई धीरे-धीरे उसके निकट आया और भाव प्रवण होकर गर्दन हिलाते हुए बोला—'क्यों ? किसलिये, रोओगी तुम ! रोना ठीक नहीं ! कोई रोना चाहता है कभी।'

'तब, तब तुम आओ !' वह आँचल से कपोलों पर लुढ़कते मोती सदृश्य आँसू को पोंछती हुई बोली—'तुम गाओगे, मैं नाचूँगी ! बोलो, बोलो है मंजूर !'

'मंजूर, मंजूर !' निताई ने नहीं प्रौढ़ा ने झुँझलाकर कहा—'अभी तो बेचारा आया है, चाय पी लेने दे, तू जा तब तक वहां घर में।'

'चाय ? नहीं, चाय नहीं पियेगा ?' वसंती ने कहा—'सुनो बड़ी अच्छी शराब है, पिओगे।' और उसने अनुनय विनय के लिये उसका हाथ पकड़ लिया।

निताई हाथ खींचकर कुछ गुस्से और कुछ प्यार से बोला—'छोड़ो।'

'नहीं'

'मैं शराब नहीं पीता हूँ।'

'पीनी पड़ेगा तुम्हें। मैं—मैं पिलाऊँगी—अवश्य पिलाऊँगी।'

'नहीं।'

'वसंती ने गर्दन टेढ़ी कर आँखों को तरेर कर कहा—'जरूर पीनी

होगी, पीनी होगी जरूर।'

प्रौढ़ा ने कहा—'मतवाली मत बन वसँती, छोड़ उसे जा घर में।'

पूर्ववत गर्दन टेढ़ी कर वसंती ने प्रौढ़ा से कहा—'चलो, तुम नहीं चलोगे, शराब नहीं पिओगे, नही ?'

'नहीं !'

'मेरी बात तुम नहीं रखोगे ?'

'तुम्हारी बात नहीं रख सकता वसन !'

वसंती ने निताई का हाथ छोड़ दिया। इसके बाद लड़खड़ाते पैरों वह अपने डेरे में चली गई और बोली—'दरवाजा बंद कर दो।'

प्रौढ़ा ने आक्षेप किया—'यह लड़की दारु पी पी कर ही अपने को चौपट कर चुकी। तुम्हीं बोलो इतनी दारु पीने से शरीर रहेगा भला ?'

निताई ने उत्तर में एक गहरी सांस ली। जिस छोकरी को चाय बनाने के लिये कहा गया था, वह एक ग्लास में चाय ले आयी और बोली—'लो उस्ताद चाय पियो !'

निताई हँसकर चाय का ग्लास लेकर बोला—'मेरी अच्छी बहन, तुमने मुझे बचा लिया।'

प्रौढ़ा भी खुशामद के स्वर में बोली—'वाह यह खूब रही। तो सुन निर्मला तू उस्ताद को भइया कहा कर और भइया दूज में भाई को तिलक करना। लेकिन उस्ताद को साड़ी देनी पड़ेगी—हूँ !'

निताई प्रसन्न होकर बोला—'जरूर !'

दूसरी छोकरी रसोई घर से ही बोली—'लेकिन मैं तो उस्ताद को जीजा जी कहूँगी।'

प्रौढ़ा खुशी में उछल पड़ी—'वाह तू तो बड़ी समझदार है। वसन को दीदी कहती है ?'

निताई का प्रफुल्लित मुख मंडल इसी क्षण धीरे धीरे म्लान पड़ गया। उसे याद आयी—ठाकुर जी ! ठाकुर जी भी राजा के दोस्त होने के नाते उसे जीजा जी मानती थी ! उसके हाथ से इसी क्षण चाय

का ग्लास गिर पड़ा—अब तक जिसे भूलने के लिये वह हजार कोशिश करता रहा, जीवन के एक क्रम को तोड़ कर दूसरे छोर से जोड़ना चाह रहा है वह सब कुछ वीणा के अचानक टूट गये तार की भाँति टूट गया और जैसे झंकृत हुआ—ठाकुर जी, ठाकुर जी !

चढ़ती रात के साथ-साथ बीभत्सता भी बढ़ती जा रही थी—एक अजीब समा, विकृत, वीभत्स रूप में बँधता जा रहा था। यह सब कुछ निताई के लिये नया नहीं है। मेले-ठेले के आनन्दोत्सव का एक दूसरा पहलू भी होता है। यह पहलू सहज में मनुष्य की आँखों की पकड़ में नहीं आता। आनन्द के विपरीत कष्ट से भरा है वह पहलू—प्रकाश के विपरीत अन्धकार से ढँका है। गहरे अन्धकार के तल अतल में पड़ा वह पहलू है मनुष्य के मन में दबी आदिम प्रवृति का भयंकर परिणाम। यह ठीक है कि निताई का जन्म भी उसी के इर्द गिर्द हुआ है लेकिन वह इर्द गिर्द भी दौलत मन्दों के सभ्य समाज की छाया में अन्धकार से ढँका पहलू है। जहां सभ्य समाज अपये मन का मैल फेंकता है। निताई के लिये यह भला कैसे नया हो सकता है या क्यों कर निताई इससे अपरिचित रह सकता है। फिर भी निताई का दम फूलने लगा।

निर्मला और ललिता के घर में भी आगन्तुक आये हैं। उनके घरों में से भी वे मन की हँसी का फौवारा छूट रहा है।

वसन्ती के कमरे से पूर्व वाले दोनों आदमी चले गये हैं और कोई एक किसी को ढूँढता हुआ या वसन्ती में ही अपने मन में खिंचे रूप को आरोपित कर उसे जीतने के लिये आया है।

प्रौढ़ा अपने गिरोह के पुरुषों को उलझाये रखने के लिये उनके साथ शराब पीने बैठी है। निताई को एक कप चाय और दी गयी है। वह अपने हृदय में देख रहा है ठाकुर जी को ! उसकी इच्छा हो रही थी कि वह अभी, फौरन, यहाँ से निकल भागे। कलंक तो उसे लग चुका है, उस कलंक की प्रति छाया ठाकुर जी पर भी पड़ी है—जैसे कलंकित

चाँद की रश्मियाँ धरती पर पड़ती हैं। अवश्य ठाकुर जी का पति उसे छोड़ देगा—अपने घर से निकाल देगा। पास-पड़ोस, समाज और दुनिया के भय से उसका बाप भी अपने घर में उसे ठौर नहीं देगा। आज उसे शर्म नहीं है, किसी का घर बिगाड़ने में कोई पाप नहीं। किसी प्रकार का भय नहीं ! तब ? आज निताई ठाकुर जी का हाथ पकड़ कर कह सकता है 'आओ आज से तुम्हारी जो गति होती है, वही मेरी होगी।

निताई विह्वल हो उठा है। और पुनः बहुत देर तक सोच-विचार कर उसने तय किया—वह यहां नहीं रहेगा, मेले के कवि दरबार का काम पूरा कर चला जायेगा। मगर अपने गाँव नहीं, कहीं और—कहीं भी। दुनिया बहुत बड़ी है, जहां उसका मन उसे ले जायेगा वहीं चला जायेगा।

किन्तु एक ही क्षण में उसके मन ने करवट ली—नहीं, नहीं, ऐसा हो सकता। ठाकुर जी का बिगड़ा घर फिर सुधरेगा। उसका सुखी संसार फिर से सुखी होगा।

ठाकुर जी उसे भूल पाती। उसे अगर वह नहीं देख पायेगी तो भूल जायेगी, जरूर। उसकी माँग की तरह उसकी गोद भी भर जाये, उसका घर द्वार सभी धन सम्पदा से भर जाये वह सुखी हो सुखी !

१५

बिना सोये ही रात उसने काट दी। सबेरा होते ही वहाँ से निकल गया। एक विशाल मैदान के मध्य दृष्टि से भी दूर-दूर तक मेला लगा था। रास पूर्णिमा में रासोत्सव का मेला। मैदान के पूर्व में राधा-कृष्ण का मन्दिर है और उसके पास ही वैष्णव बाबा जी का अखाड़ा था। हाथ मुँह धोकर निताई उसी राधे गोविन्द के मन्दिर में जा पहुँचा।

मन्दिर के अन्दर उच्च आसन पर नृत्य रत सखियों के बीच राधा-कृष्ण उसे बहुत अच्छे लगे। वहीं पर बैठ कर वह गीतों की रचना करने लगा। राधा कृष्ण के युगल रूप का वर्णन गीत। पहले वह गुनगुनाता रहा, फिर वह खुल कर गाने लगा। कई भक्त श्रोता भी वहाँ आ इकट्ठे हुए। अखड़े के महन्त भी आये। और वह गा रहा था—

'आस मिटा कर निरखें अखियाँ

युगल रूप प्रभु तेरी !'

महन्त गीत की लय के साथ-साथ गर्दन हिलाते हुए तालियाँ पीटने लगे और बोले—'ढोलक लाओ भक्त !'

और वह ढोलक लेकर उसके सामने बैठ गया। जब निताई का गीत खत्म हुआ तब उसने पूछा—'पदावली गाना जानते हो भक्त ?'

निताई पदावली गाना नहीं जानता। उसने विनम्र स्वर में कहा—'जी, क्या कहा आपने ?'

'चण्डीदास, विद्यापति के गीत जानते हो ?'

निताई करबद्ध होकर बोला—'भगवन्, इस अधम का जन्म डोम कुल में हुआ है, पदावली कैसे जानूँ ?'

महन्त हँस कर बोले—'जन्म ही तो प्रधान नहीं है भक्त, कर्म महान है, हमारे भगवान तो चाण्डालों से भी गले मिले हैं :

निताई की आँखें डबडबा आयीं। वह बोला—'कर्म भी तो बहुत निकृष्ट है भगवान ! झूमर दल में—वेश्याओं के साथ रहता हूँ, उनकी मजलिस में गाता हूँ और भंडैती लिखता हूं।'

'तो तुम कवि हो ?'

'हाँ भगवन् !'

'जो गीत अभी तुम गा रहे थे क्या तुम्हारी रचना है ?'

निताई का मस्तक झुक गया और वह शर्मा कर बोला—'जी, जी हाँ !'

महन्त ने उसे साधुवाद देते हुए कहा—'वाह, बहुत अच्छे गीत

लिखते हो। तब तो तुम्हारा कर्म बहुत ही ऊँचा है। कितने उच्च विचार तुम्हारे ! जो कवि हैं, वे ही तो संसार के महान जन हैं। संसार उनका सदा से ऋणी है। वे ही तो वास्तव में साधक हैं। कवि के गीत से भगवान विभोर होते हैं। चण्डीदास की पदावली सुन कर भगवान भाव में विभोर होकर नाचते थे।'

टप टप कई बूँद आँसू निताई की आँखों से भर गये। वह बोला —'मगर हम तो हैं नीचों की संगत में—वेश्याओं के साथ।'

महन्त ने हँस कर ऊँगली के इशारे से निताई को बीच में ही कहने से रोक लिया, बोले—'भगवान के संसार में नीच कोई भी नहीं है। स्वयं, दूसरे नहीं—जो स्वयं नीच होता है वही दूसरों को नीच समझता है। नीला ऐनक कभी तुमने आँखो पर चढ़ाया है ? सूर्य की प्रखर किरणें भी नीले रंग की दिखाई देंगी। तुम्हारी आँखों के नीले ऐनक की तरह मन की घृणा दूसरों को घृणित बना देती है। मन के विकार के कारण इतनी मोहक पृथ्वी को त्यागने के लिये इन्सानआत्म हत्या करता है ? और वेश्या—चिंतामणी भी वेश्या ही थी—साधक विल्वमंगल की, उनके महान प्रेम की गुरु। तुम जानते हो विल्वमंगल की प्रेम कथा ?'

निताई व्यग्र और व्याकुलता से महन्त के मुख की ओर देखते रह कर बोला—'अगर आप सुनायें तो बड़ी कृपा होगी भगवन !'

महन्त स्नेह से हँस कर उसके निकटतर बैठ गये और बोले—'तुम मेरे पास आ जाओ संकोच न करो। भगवान के तुम भी तो दास हो —हम लोगों के लिये कोई किसी से छोटा नहीं है और तुम तो एक कवि हो, तुम महान हो—आओ यहाँ पधारो।'

वे विल्वमंगल की कहानी कहने लगे और कहानी खत्म कर बोले —'परिस्थिति गनि को जहाँ भी मिले, वहीं संतोष के साथ रहो; अपना कर्म करते जाओ। कमल कीचड़ में रहता है मगर उसमें कीचड़ जरा भी नहीं लगता।'

इतना कह कर वे थोड़ा हँसे—विचित्रता पूर्ण हँसी। झूमर दल की छोकरियों का गाने-बजाने और नाचने के कारण निताई उनका सम्मान अवश्य करता था लेकिन उनके प्रति उसके मन में घृणा संचित थी। आज वह भी उसके मन के कोने से निकल गयी, वह भी न रही। जैसे उसका मन जुड़ा गया है। लौटते समय बार-बार उसकी आँखों में पानी भर आया। धोती के किनारे से उसने आंखें पोंछ लीं और मन ही मन महन्त जी को उसने प्रणाम किया। उसने यह निश्चय भी किया कि राधा कृष्ण के प्रसाद के साथ-साथ वह महन्त जी का आशीर्वाद भी माँग लेगा।

झूमर दल के अड्डे में पहुँच कर वह अवाक् हो गया। उसे प्रतीत हुआ कि यह भी शायद राधा कृष्ण की ही कृपा है।

यह अचम्भे की बात नहीं तो और क्या है? आज के सबेरे के इस स्थान और चरित्रों के रूप के साथ गत रात के लोगों का जरा भी मेल नहीं। गोबर और मिट्टी से वहाँ की जमीन लीप दी गयी है—पवित्रता का निर्वाह किया गया है। पेड़ के नीचे एक केले के पत्ते पर कुछ फूल रखे हैं। गिरोह की बड़ी बूढ़ी स्त्रियाँ भींगे केशों को पीठ पर झुलाये शांन्ति से बैठी हैं। सभी लाल किनारे की साड़ी पहने हैं। एक प्रकार की नीबड़ और गम्भीर पवित्रता का आभास वहाँ के कण कण से मिल रहा है।

वसन्ती पीछे मुड़ कर बैठी थी, निर्मला और ललिता बैठी थीं इस ओर मुँह किये। वे अभ्यर्थना कर बोलीं—'खूब आदमी हो तुम। अब तक कहाँ थे भला?'

वसन्ती ने मुड़ कर देखा। निताई मधुर-मधुर मुस्काया। वसन्ती ने मुँह मोड़ लिया और दूसरे क्षण ही वह वहाँ से उठ कर रसोई घर में चली गयी। निताई, ललिता और निर्मला के निकट आकर बोला—'वाह बहुत अच्छा लग रहा है। चारो ओर धोया पोंछा गया है, गोबर से पवित्र किया गया है। लाल किनारे की साड़ी पहने हो—'

'अरे आज लक्ष्मी पूजा है न भैया' निर्मला हँस कर बोली।

'लक्ष्मी पूजा ?'

'हाँ, आज पूर्णिमा है और वृहस्पतिवार, वैसे तो हम लोगों के लिये लक्ष्मी पूजा बारहों मास है।'

निताई यह सुनकर सन्न रह गया। इतने दिनों तक इनके साथ रहने पर भी वह यह बात नहीं समझ सका था कि इनका भी धरम-करम है! उसने प्रश्न किया—'पूजा कब होगी ?'

'शाम को। आज तुम्हारा गाना बजाना शुरू होते होते नौ बजेगा, नौ।'

बूढ़ी ने कहा—'अरे, भइये हम लोग भक्तिन ठहरे कोई, ऐसी वैसी नहीं हैं।'

ललिता विद्रूप से पूर्ण हँसी हँसकर बोली—'ऐसी वैसी तो नहीं, मगर जैसी तैसी हम लोग जरूर हैं।'

बूढ़ी ने चपलता के साथ इशारे से चुप रहने को कहा।

वसन्ती वहाँ आ खड़ी हुई, उसके हाथ में एक ग्लास है। उसने निताई के सामने ग्लास बढ़ा दिया—'लो।'

निताई ने उसकी मुँह की ओर स्निग्ध दृष्टि से देखकर बोला—'क्या ?'

मुँह बिगाड़कर वसन्ती ने कहा—'शराब, लो पकड़ो।'

निताई ने ग्लास उसके हाथ से ले लिया, देखा—उसमें चाय थी।

ललिता ने हंसकर कहा—'जरा समझ बूझकर पीना, उसमें कहीं वशीकरण मंत्र न डाल दिया गया हो।'

वसन्ती चली जा रही थी, वह खड़ी हो गयी और मुँह चिढ़ाकर ललिता से बोली—'तेरे मुँह में आग लगे, जलती है!'

निताई हँसकर इस बात को अपने ऊपर ले गया—'वही दो, आग से कोयले की तरह काला शरीर गोरा हो जायेगा। जानती हो—'

'काले कोयले में आग लगे तो लाल वरण हो जाये।'

ललिता को बड़ा मजा आया। वह खिल-खिलाकर हँस पड़ी जैसे उसे किसी ने गुदगुदा दिया हो। वह वसन्ती को लक्ष्य कर बोली—'जाती कहाँ हो आग लगाकर।'

वसन्ती की कटीली आँखों में बिजली की तरह तड़ित हुआ गुस्सा। मगर दूसरे क्षण ही वह हँस कर बोली—'शराब में जलती हूँ, जानती है ?' इतना कह कर उसने अपने शरीर पर से कपड़ा हटाकर दिखाया और पुन: बोली—'यह है शराब की आग !'

और वह अपने कमरे में चली गई।

निताई को याद पड़ी कल की रात की बात—वह हँसा।

उस दिन औरतें सभी उपवास किये थीं। उस उपवास को उन लोगों ने निष्ठापूर्वक निबाहा भी। शाम को फल-फूल, सन्देश, दूध, दही और तरह तरह की साधना-उपासना के साथ लक्ष्मी जी का पूजन किया। पूजा अर्चना के अन्त में सब लोग बूढ़ी को घेर कर अपने-अपने हाथों में एक-एक सुपारी लेकर कथा सुनने बैठीं। निताई दूर पर ही बैठा था। अन्य मर्द अलग बैठे शराब पी रहे थे और रात की मजलिस के लिये साज सामान ठीक कर रहे थे। बेहला बजाने वाला बेहले पर पालिश चढ़ा रहा था। शागिर्द ढोलकिये के साथ किसी ताल पर बहस कर रहे थे। हाथ से ताल दे रहे थे और कह रहे थे एक दो, एक दो, एक हारमोनियम बजाने वाला अपने मन के सुर में ही तानारीरी छेड़े बैठा था।

भैंस की शकल का आदमी शराब के नशे में ऊँघ रहा था। औरतों के खा-पी लेने के बाद ही नाचना-गाना शुरू होगा। वे सबके सब लड़ाई के घोड़ों की तरह प्रस्तुत हो रहे हैं।

बूढ़ी व्रत महात्म्य की कथा सुना रही थी।

'पुराने जमाने में एक वेश्या थी, बहुत ही गरीब। वह रूपवती भी नहीं थी और उसका कण्ठ भी सुरीला नहीं था। वह भक्ति भाव के लिये ही रोज स्नान करती, लक्ष्मी जी का व्रत करती थी, शाम को घर में धूप देती, उसके घर में जलने वाली बत्ती नित्य जगमगाती रहती। लक्ष्मी को प्रणाम कर वह शृंगार करती और फिर ग्राहकों की आशा में अपने दरवाजे पर आ खड़ी होती। ग्राहक आता तो उसका वह पति से भी बढ़कर आदर करती। उसकी बोली से मधु टपकता। उसके आचार-विचार में रहती पत्नी की निष्ठा। लोग उसके घर आने वाले खुशी-खुशी जितना देते उतने में ही वह संतुष्ट रहती। सवेरे को उठकर वह घर साफ करती, बिछावन साफ करना तो उसका नित्य का काम था, अतिथि और अभ्यागत को वह देवता की तरह मानती थी।

और एक थी धनी माँ की लाड़ली। रूप के गर्व में चूर अपने ग्राहकों से वह झुँझलाकर बातें करती। वह व्रत नहीं करती। लक्ष्मी के आसन पर वह रखती थी वेणी का फ़ीता, तेल की कटोरी और शराब की बोतल।

तो इस तरह लक्ष्मी जी की कृपा से वह बदसूरत भक्ति-भाव रखने वाली वेश्या एक दिन रूप सागर में स्नान कर हो उठी अपरूप और उसका कण्ठ इतना सुरीला हुआ कि क्या कहने। वह एक ग्राहक को पति मान कर शरीर त्याग देती है। और रूप गर्वीली जब उसकी देखा-देखी रूप सागर में स्नान करने गयी तब लक्ष्मी उस पर कुपित हुई और उसका रूप बिगड़ गया। उस लालची ने अधिक से अधिक रूपवती होने के ख्याल से और भी एक डुबकी लगायी तब वह बूढ़ी सी हो गयी तथा उसका सुर कौवे की तरह हो गया। यानी उसे अपना जीवन भीख मांग-मांग कर काटना पड़ा।'

व्रत-कथा शेष हुई। इसके बाद प्रसाद लेकर सब लोग अपने-अपने घर चली गयीं। बूढ़े ने मर्दों को पुकार कर कहा—सब लोग प्रसाद ले लो।

वसन्ती ने अपने कमरे के दरवाजे पर खड़ी होकर निताई को पुकारा—'सुनो !'

'मुझे पुकारती हो ?'

'हाँ'

आज निताई को निष्ठावती वसन्ती के पास जाने में जरा भी संकोच महसूस नहीं हुआ। वह उसके डेरे में जा घुसा और बोला—'क्या कहती हो, कहो।'

वसन्ती उसकी ओर देखकर लज्जा में नौ नौ मन की हो गयी और धीरे से मीठी आवाज में बोली—'जरा प्रसाद खा लो।' एक पत्ते पर उसने श्रद्धा से प्रसाद उसकी ओर बढ़ा दिया। वसन्ती के इस रूप से निताई मुग्ध हुआ—वही वसन्ती ऐसी भी हो सकती है ?

निताई पीढ़े पर बैठ गया। खाते हुए बोला—'जय, जय हो तुम्हारी।'

वसन्ती ने कहा—'ज़रा-सा प्रसाद उसमें छोड़ देना।'

निताई चकित होकर बोला—'प्रसाद ? छोड़ दूं ?'

'हां, वसन्ती ने कहा—'हमें अपने प्रीतम का प्रसाद ही खाना चाहिये।

वह हँसी। वसन्ती के होठों पर ऐसी हँसी निताई ने कभी नहीं देखी थी। वह एक टक उसकी ओर देखता रहा। वसन्ती घर की चीजों को सम्हालने सहेजने के लिए उसके पीछे आ गई। वह गीत की कड़ी गुनगुना रही थी। निताई को उसका वह गीत बड़ा भाया।

'तुम्हारे चरणों में मेरे प्राण में लग गयी फाँसी—
जाति कुल मान सब त्याग कर हुई मैं तो प्यासी।'

'वाह-वाह' ऐसा गीत ! निताई उस पर मुग्ध हुआ।'

'वह चण्डीदास—'

'क्या, क्या ? वसन्ती, चण्डीदास क्या ?'

दोनों हाथ जोड़कर वसन्ती ने उसे प्रणाम किय, और कहा—

'कवि का गीत है—चण्डीदास की पदावली।'

'तुम चण्डीदास को जानती हो!'

'झूमर का प्रथम सोपान यही है!' वसन्ती हँसी। 'हम लोगों को उनके जाने कितने पद याद है और कितने तो खाते में लिखे रखे हैं।'

१६

रात के जब नौ बजे, तब कहीं बारी-बारी से गीत शुरू हुए। आलोकोज्ज्वल मेले में रात के आनंद में प्राप्ति के लिये भूली-भटकी जनता की अपार भीड़ शराब में पैदा होने वाले फेन की तरह उमड़ पड़ी।

सर्व प्रथम मौका मिला विरोधी दल को। उस दल का कवि भंडैती मे दक्ष था। खड़ा होते ही उसने सहेलियों को दूतिका बनाया और निताई को बनाया कृष्ण; और फिर वह गाने लगा। कृष्ण काले थे इसलिये उसने रूपक में निताई की रंगे सियार से तुलना की तथा उसे लांछित किया कि यह कवि नहीं कौआ है।

इसके बाद ही उसने शुरु किया अश्लील गीत गाना। चन्द्रावली के रूप गुण की काले जामुन से तुलना कर वह उसकी ओट में वसन्ती के रुप गुण की विकृति की भोंडी व्याख्या करने लगा। लेकिन यह कहना ही पडेगा कि वह जो कुछ भी गा रहा था उसके गाने में कोई त्रुटि नहीं थी। उसने श्रोताओं को अपने अश्लील गीतों से मस्त कर दिया। इसी दल का वह एक पुराना कवि है, वसन्त के एक थप्पड़ मारने के कारण उसके दल को त्याग दिया। वही वसंती में दोष-गुण

का वर्णन करने में चूका नहीं। वह वसंती की ओर इशारा कर गाता ही गया। और साथ ही साथ विकृत नृत्य भंगिमा का प्रदर्शन भी करता रहा। उसके दल की जो औरतें उसके साथ नाच रही थीं, उन लोगों ने भी वसंती की ओर ऊँगली उठायी।

निताई को संदेह हुआ। इस भोंड़े भद्दे गीतों के श्रोता उसकी कविता को पसंद नहीं करेंगे, कदापि नहीं। मगर अपनी हार की बात वह नहीं सोचता। वसंती की बात सोचकर भी उसे शंका हुई। वसंती ऐसी वैसी नहीं है। एक ही क्षण में वह आग की तरह धधक उठेगी। क्या ठीक मजलिस में ही कुछ न कर बैठे। बार-बार वह वसंती के मुँह की ओर ही देख रहा था। मगर यह भी एक आश्चर्य है कि ऐसे अवसर में वसन के धैर्य की सीमा नहीं रहती। वसंती चुप-चाप बैठी है। जितनी बार निताई की आंखें उस से मिली, उतनी ही बार उसके होठों पर हँसी फूट गयी। उसकी ऐसी हँसी का अर्थ समझने में निताई ने गल्ती नहीं की। वह हँसकर निताई से कहना चाहती है कि सुन रहे हो? इसका बदला तुम्हें लेना होगा। निताई को याद आयी कल की रात की दो चार बातें, वसंती ने उससे पहली मुलाकात में कहा था—'काले कलूटे मेरे श्याम सलोने। तुमने मेरी इज्जत रखी है।'

वसन्ती आज बड़ी अच्छी लग रही है। नाचने की जल्दी में जब कि उसे आज अपना शृंगार करने का अवसर नहीं मिला है। उसके लम्बे-लम्बे घने केश पीठ पर झूल रहे हैं। लाल किनारे की तीखी साड़ी को भी जैसे-तैसे पहन लिया है। इन सभी चीजों से जो कुछ अच्छा लग रहा है वह है उसकी कटीली आँखें और उसका देखना। आज किसी भी स्त्री ने शराब नहीं पी है, उसने भी नहीं पी है। मगर उसकी अलसाई आँखें सभी की आँखों से निताई को अच्छी लग रही हैं। वसन्ती अजीब प्रकार से देखती है। जिस प्रकार शराब के नशे में उसकी आँखें रक्ताभ और तेज छुरी की तरह चमकती है, उसकी ऐसी

आँखें देखकर निताई को लगा जैसे उसने आँखों में चाँदी का काजल पहन रखा हो।

विरोधी दल का उस्ताद गीत समाप्त कर बैठ गया। इर्द-गिर्द श्रोताओं का जमाव था, सड़ी मछली के बाजार में मक्खियों की तरह! पैसा, इकन्नी, दोअन्नी, चवन्नी से थाल भर गया। उसमें दो एक रुपये भी हैं। गीत समाप्त होते ही लोगों की 'राम नाम सत्य है' की ध्वनि गूँज गयी। यही है उन लोगों का साधुवाद।

पास में ही है, सस्ती पकौड़ी और भुने हुए मांस की दूकान—वहाँ चोरी से शराब भी बिकती है। वहाँ और एक बार भीड़ जम गयी। दल की दो छोकरियों को साथ लेकर दो चार शौकीन किसान दूकान में कुछ खाने-पीने के लिये आ बैठे।

निताई उठा। उसका सारा शरीर पसीने से लथ-पथ हो गया था। गला जैसे सूखता जा रहा हो—वह, इतनी शराब की प्यासी जनता को कैसे तृप्त करे? बहुत कुछ सोच विचार कर वह गाने लगा—

दारू जैसी वस्तु नहीं
आँखों में जादू लाये—काले को सादा दिखाये
राजा भी गाल बजाये।

ऐसी मजलिस में गाने वाले कवियों की सिफत है बदमाशी। इससे भी अधिक गाल बजाना यानी अपनी बात को सच साबित करना। छै को नौ और नौ को छै। गले बाजी से ये जीत जाते हैं। अश्लील गीतों को छोड़कर निताई ने तथ्य की बात कहनी चाही। उसने गाया—

'भाई तुम निन्दा करते मेरी अकारन।
क्यों कि कारण—पीकर मत है तुम्हारा मन'

'नहीं तो मेरे मतवाले दोस्त तुम चन्द्रावली की निन्दा कभी भी नहीं करते? चन्द्रावली कौन है? जो राधा है वही तो चन्द्रावली है। जो काला है, वही तो कृष्ण हैं। चन्द्रावली की ओर अच्छी तरह से देखो। पहले खट्टा खाओ, सर पर पानी डालो नशा टूट जायेगा इसके

बाद चन्द्रावली की ओर देखो। देखोगे चन्द्रावली में राधा है और राधा ही चंद्रावली है। राधा तत्व का अर्थ मजलिस के दसवें पृष्ठ की दसवीं पंक्ति पढ़कर समझो।' इसके बाद उसने शुरु किया चंद्रावली का सौंदर्य वर्णन। यानी बसन्ती के रूप की ही उसने वर्णनना की। उसे बिल्कुल सातवें आसमान की नायिका सिद्ध कर दिया। वसन्ती नाच रही थी। कल के शराब के नशे से थके शरीर से वह बड़े अच्छे ढंग से नाच रही थी—लेकिन उसका रूप, बिखरा यौवन भी का मुक्तामय लास्य में तीव्र तीक्षण नहीं हुआ। हो सकता है नशे के अभाव में या निताई के गीत में इस रस के अभाव के कारण। सिर्फ वसन्ती का नृत्य ही नहीं, धीरे-धीरे मजलिस भी ऊँघने लगा। दर्शक छँटने लगे। दो-चार दर्शक जाते समय कह गये धत्! उपदेश से काम नहीं चला।

बूढ़ी ने कई बार दबी जुबान से निताई को कहा—'रंग चढ़ाओ उस्ताद, रंग!'

ढोलकिया वसन्ती के पास जाकर बोला—'अरे जरा कमर लचकाओ और आँखें मटकाओ

वसन्ती भला आँखें कैसे मटकाये? उसकी आँखें तो बार-बार भर आती हैं। वह कमर भी क्योंकर लचकाये, शरीर में जब शक्ति हो तब न। मजलिस में उसकी आज की तरह दर्शकों की अवहेलना कभी नहीं हुई। निताई के गीतों के सात्विकता पूर्ण भाव के कारण उसकी ओर कोई मुँह फिराकर भी नहीं देखता। उसके ऐसे गीतों की वजह ही से वसन्ती नाच में आँच नहीं ला पा रही है। सबसे अधिक अपने दल की हार ही उसे अधिक कष्ट पहुंचा रही है। वे नीचे तबके की शरीर का सौदा करने वाली ठहरीं, शरीर और स्वरूप के ऊपर ही घमंड उन्हें है, सो भी केवल घमण्ड ही—जीवन की मर्यादा नहीं। क्योंकि उनके इस घमंड को पुरुष पैसे के बल पर पैरों के तले कुचल कर चले जाते हैं। इसीलिये तो इनकी मर्यादायें गाने बजाने और नाच मुजरे की गोद में सुबकियाँ ले रही हैं। ये दो वस्तु ही उनके जीवन

का एक मात्र सत्य हैं। इस सत्य को वे जानती हैं, वे अच्छी तरह यह जानती हैं कि अच्छे नृत्य-गीत की कदर झूठी नहीं है। हजारों आदमी चुप चाप सुनते हैं उनके गीत और मुग्ध दृष्टि से देखते हैं उनका नाच। रस हीन रुखे जीवन में यही साधना तो उनके लिये सब कुछ है। कुशलतापूर्वक गाने और नाचने में ही तो उनका घमंड है। समाज इन बातों को उनकी तरह समझ नहीं पाता। इसी श्रेष्ठता के घमण्ड में वे गणना हीन श्रोत के समाज को नगण्य मान कर नाचती और गाती हैं। समाज के गणमान्य प्रतिष्ठित लोगों के सम्मुख अकुंठित अधिकार से गीत के तान मान प्राप्त कर तर्क करती हैं। अश्लील गीत ऐसी मजलिस के लिये अनिवार्य अंग हैं। विशेष कर झूमर दल के लिये। अश्लील गीत जानना और रचना भी, दल के लिये घमण्ड की ही बात है। आज दल की हार के साथ-साथ वही मर्यादा जैसे धूल में मिल रही है—इसी चिंता में वसन्ती का तन और मन दोनों टूट रहे हैं।

हार के बोझ से निताई गर्दन झुका कर बैठ गया। ढोलक तिताला से सम पर आकर बन्द हो गयी। वसंती ने भी नाच खत्म कर दिया। वह मजलिस में नहीं बैठी, बोझिल कदमों से वहाँ से चली गयी। प्रौढ़ा, दल की मालिकिन ने प्रश्न के स्वर में केवल कहा—'वसन ?'

'तबियत ठीक नहीं है मौसी !'

प्रौढ़ा हँसकर बोली—'देखना मेरे भइया अब क्या करामात दिखाते हैं।'

वसंती ने एक बार मुड़कर केवल देख लिया फिर जरा सा हँस दिया। वसंती से निताई को इतनी परिहास पूर्ण हँसी की आशा नहीं थी। राजन की पत्नी जब उसका अपमान करती थी, तब ऐसी हँसी हँसती थी, ठाकुर जी ! वसंती की जैसी लड़की के होठों पर ठाकुर जी की हँसी और भी कारुणिक हो उठी है। ठाकुरजी की ऐसी हँसी देखकर उस पर दया आती थी, लेकिन वसंती के होठों पर थिरकती हँसी देखकर निताई की आँखें डबडबा आती हैं।

मगर वह बूढ़ी बड़ी विचित्र है। वह जरा सी भी विचलित नहीं हुई। दल के बेहला बजाने वाले को उसने योंही कहा—'पाला की थाली उठा ला।'

वह थाली उठाकर उसके सामने रखते हुए बोला—'कई दुअन्नियाँ ही तो हैं सिर्फ ! सब मिला-जुलाकर दो रुपये से अधिक नहीं होंगी।'

बूढ़ी ने कहा—'पहल गिन तो !' इसके बाद वह पान का डब्बा अपने आगे खींचकर बैठ गयी और फिर बोली—मेले में गाली गलौज सुनने वालों की ही भीड़ होती है ! नहीं तो कहाँ मेरे नीतू का गीत और कहाँ उस बदज़ात की भंडैती ? तुम तो समझते हो गीत, तुम्हीं बोलो भला जमीन आसमान का फर्क नहीं तो और क्या है ?'

बेहला वाले ने कहा—'हाँ यह ठीक कहती हो तुम, मगर जब गाली गलौज से मजलिस जमती है तब बिना उसके गाये चलेगा कैसे ? और फ़िर वह भी तो गीत ही है।'

बूढी को मंजूर करना ही पड़ा—'हाँ यह भी ठीक कहते हो।' मुँह में पान भर कर उसने पुनः कहा—'तुम नहीं जानते हो। उस्ताद का कमाल अंतिम प्रहर में देखना ! क्या करता है देखना तुम भी।'

निताई चुप चाप सोच रहा था।

निर्मला, ललिता इन दोनों छोकरियों के चेहरे भी उदास हैं। आपस में दोनों बातें कर रही हैं—शायद यही हार जीत की बातें वे कर रही है। उनके चेहरे पर भी हार की लज्जा की रेखाएं उभड़ी हैं। लम्बी सांस खींचकर निताई ने सर झुका लिया। सभी की लज्जा जैसे सिमट कर उसके सर पर इकट्ठी हो गयी है। केवल लज्जा का बोझ ही नहीं उसके दुःख की भी सीमा नहीं थी। इंसान केवल शराब के नशे में चूर रहना चाहता है, अमृत रस से आनंद उसे नहीं मिलता क्यों ? ओह।

उधर विरोधी दल के ढोलकिये ने बजाना शुरु कर दिया। उसकी

ढोलक की आवाज में जैसे विजय का अहम है। उस दल का कवि वहाँ नहीं था। बाजे की आवाज सुन कर वह कहीं दस कदम की दूरी से एक उक्ति कहता हुआ नाटकीय ढ़ंग से उपस्थित हुआ।

हाय, हाय, हाय,

कालूराम कह गये क्या आयँ, सायँ, बायँ ?

मुर्गी और सूरी, सिहनी और सूरी, सेमर और गुलाब, कौआ और कोयल, दुशाला और रामनामी, राधा और चंद्रावली में कोई फर्क नहीं, दोनों एक ही हैं ?' इसके बाद उसने शुरू की अश्लील उपमाएँ। इसके साथ ही साथ जैसे मजलिस में बिजली की तरह दौड़ा एक कौतूहल। लोग आनंद विभोर होकर बोल उठे—'राम नाम सत्य है। वह कवि क्षण दो क्षण शांत रह कर गा उठा :

'कालूराम के काले मुंह में
अब लगाओ आग,
उस आग में सेंक लो राधे
अपना गीला हाथ !'

इसी प्रकार ऊट पटांग पंक्तियों में, जिस प्रकार भी गाली गलौज दे कर उसने मजलिस को बहुत जल्दी जमा लिया।

निताई वहाँ से उठा और मजलिस के बाहर जाने लगा। कि—'उस दल की एक औरत नाचती हुई आयी और उसे पकड़ कर गाने लगी—

पकड़ो, पकड़ो, कालूराम
भागा भाव बिसार के

वातावरण हँसी से भर उठा। लेकिन निताई को गुस्सा नहीं आया। वह हँसते हुए उस औरत की बुद्धि की प्रशंसा कर उठा—'वाह, वाह। बड़ा मौजू रहा।'

× × ×

निताई आया और वसंती के दरवाजे पर खड़ा हो गया। अंदर

टिमटिमाती रोशनी, बाहर एक धूनी रमाकर उसी के सामने भैंसे की शकल वाला आदमी बैठा था। हिंसक पशु की तरह शिकार से पेट भर कर अकेला अंधकार में बैठा है। पैरों की आहट से उसने मुड़कर देखा और निश्चित होकर फिर मुँह मोड़ लिया। निताई ने वसंती के कमरे में घुसने की हिम्मत नहीं की। तन का सौदा करने वाली का घर! उसने बाहर से ही पुकारा—'वसंती।'

'कौन?' कमरे के अन्दर से आवाज आयी। आवाज में झुँझलाहट स्पष्ट थी।

'मैं—निताई।' मजाक में 'कालूराम' कहने की उसकी हिम्मत नहीं हुई।

'क्या है?'

'अंदर आ सकता हूँ?'

'जरूरत क्या है?'

'है जरूरत।'

पलक मारते ही वसंती स्वयं दवारजे पर आ हाजिर हुई। अधीर अस्थिर लड़खड़ाते कदमों वह आ खड़ी हुई निताई के सम्मुख, ठीक नंगी तलवार की नाईं चमचमाती हुई। बाहर की प्रज्वलित धूनी की लपटों के प्रकाश में उसका सर्वांग चमक उठा। निताई देखकर सशंकित हुआ—आज दोपहर की पुजारिन शांत, कोमल निष्ठावती वसंती यह नहीं है, यह तो पुरानी जानी-पहचानी वसन है जिसकी दृष्टि में तलवार की धार की चमक, जिसकी बोली में तरकश से छूटे तीर की तेजी और जिसकी चाल में विनम्रता को कुचलने का अहंकार है, यह वही वसन है।

वसंती ने कहा—'मैं नहीं जाऊँगी वहां, नहीं कभी नहीं। क्यों तुम आये हो?'

निताई कोई उत्तर नहीं दे सका केवल आश्चर्य चकित वसंती की ओर देखता रहा।

अचानक बसंती ने उसके गाल पर एक थप्पड़ जड़ दिया और बोली—'उल्लू की तरह मेरे सामने क्यों खड़ा है, क्यों ? क्यों ? क्यों ? निकल जाओ, निकलो ।'

इतना कह कर वह पुन: अपने कमरे में लौट गयी । जिस प्रकार वह आयी थी, उसी प्रकार वह लौट गयी । इस पर भी उसका मन जैसे शांत नहीं हुआ ।

निताई कुछ क्षण चुपचाप खड़ा रहा, इसके बाद उसने आवाज लगाई—'पहलवान ।'

पहलावन नशे में धुत बना बैठा था । उसने कोई उत्तर नहीं दिया । उत्तर में लाल-लाल बड़ी-बड़ी आंखों की पलकों को उठाकर उसकी ओर देखा ।

'तुम्हारे पास दारु है ?'

पुन: उसने बिना कुछ कहे सुने इधर-उधर हाथ हिला डुलाकर एक बोतल निकाल कर सामने रख दी । बोतल को हाथ में लेकर निताई ने एक बार सोचा—और फिर एक लम्बी सांस खींचकर बोतल में मुँह लगा दो चार घूँट घोट गया । हृदय जैसे जल उठा । उसकी अन्तर्-आत्मा जैसे चीत्कार कर उठी—भयंकर कै के कारण उसका शरीर जैसे टूटने लगा । मगर उसने पूरी शक्ति लगाकर इन समस्त क्रियाओं का प्रतिरोध किया । धीरे-धीरे शराब की तेजी जब कम हुई, तब उसके अन्दर एक भयंकर और अधीर अनुभूति जाग उठी, जिसके ऊपर उसका कोई बस नहीं था ।

पुराने जमाने के वीर वंशियों के नसों में प्रवाहित बर्बर मरे हुए जीवाणु शराब के स्पर्श से—जिस प्रकार पानी पाकर महामारी के कीटाणु फैल जाते हैं—उसी प्रकार उसके रक्त कणों में जाग रहे हैं ।

दूसरी बार जब वह मजलिस में पहुंचा, तब उसका रूप ही बदल गया था, सामाजिक जीवन में मनुष्य का जितना पाप, जितनी कुत्सा, जितनी अश्लीलता, कूड़े-कर्कट के ढेर की तरह जहां इकट्ठी होती है,

उसी के घेरे में बहुत दिनों से जो दारिद्र बसता आ रहा है, उन्हीं की तो सन्तान है वह ? मा वहां गाली-गलौज, भोंडे भद्दे वाक्य जाल से शासन करती है, उच्छ्वासित स्नेह और अश्लील अभिव्यक्ति से वह आदर करती है, अपनी संतान को अश्लीलता की शिक्षा देती है। इस भोंडी भद्दी, अश्लील, कुत्सित, भाषा और भाव से निताई अनजान नहीं हैं। लेकिन जीवन में सामान्य शिक्षा और कविता की चर्चा में वह सब कुछ भूलना चाहता है। ऐसी बातों से घृणा है। मगर आज वह शराब पीकर पागलों की तरह उन्हीं वस्तुओं को निगल रहा है। छन्द और स्वर पर उसका अधिकार है, उसके कण्ठ में मधु है। अब देखते देखते ही मजलिस जम उठी। जीवन में पहली बार नशे के प्रभाव में सम्पूर्ण मजलिस और मेला उसकी आँखों के सामने झूम रहा था। एक आदमी की दो आकृति उसे नजर आ रही थीं। दो निर्मला, दो ललिता, प्रौढ़ा भी दो, बजाने वाले भी दो, सब कुछ दो दो। अचानक एक समय उस ने देखा—दो दो वसन्ती वहाँ नाच रही है। वाह वाह, क्या नाचती है—।

मजलिस को अश्लीलता से आकण्ठ भर कर, तब कहीं वह बैठा। इस बार पाला की थाली भर गई है। उसके गीत के खत्म होने के साथ ही साथ एक जोर की ध्वनि उठी—आनन्दोत्साहित जनता का सम्मिलित स्वर—राम नाम सत्य है।

प्रौढ़ा उसकी पीठ पर हाथ फेरकर बोली—'मेरे भइया, बिना माल खाये, मेले में कमाल नहीं पैदा किया जा सकता है। मतलब रोग के अनुसार दवा। वसन्ती मेरे भइया को और एक गिलास दे, न। गला सूख गया होगा बेचारे का !'

वसन्ती ! इतनी देर बाद निताई ने भर निगाह वसन्ती की ओर देखा।

रक्त से रंगी है निताई की आँखें। पैरों के नीचे धरती घूम रही है, शील-संकोच सब कुछ भूलकर निताई अपने गीत से खुश है।

वसन्ती अपनी लज्जाहीन आँखें निताई की आँखों में डाले है। आश्चर्य है वसन ! कुछ देर पहले वसन ने निताई को थप्पड़ मारकर इतना घोर अपमान किया है, इसके लिए अभी वह अपने को जरा भी लज्जित नहीं महसूस कर रही है। निताई के गर्व से वह गर्वित हो उठी है।

'दो, दो एक ग्लास !' निताई हँसा।

'आओ घर में आओ, अच्छी शराब है—विलायती। वसन्ती उस का हाथ पकड़ कर गर्व से चूर उठ खड़ी हुई। ग्लास में विलायती शराब में थोड़ा पानी मिलाकर निताई की ओर उसने बढ़ा दिया। बिना कुछ कहे सुने ग्लास साफ कर निताई वसन्ती की ओर देखकर हँसा—बोला—'तुम, तुम भी पिओ।'

'आज हमें नहीं पीनी चाहिये।'

'क्यों ?'

यह वसन आज की सन्ध्या की नयी वसन है। निताई के नशे का तेज जैसे फटने लगा।

'आज पूजा की है न मैं ने—लक्ष्मी जी की। तुम थोड़ी और लो न। अभी और तुम्हें गाना है।'

'दो, दो ना एक ग्लास।'

वसन ने हँसकर थोड़ी शराब उसके गिलास में और डाल दी। उसे भी पीकर निताई ने कहा—'ठहरो, तुम्हें मैं देखूँगा।'

वसन्ती हँसकर बोली—'नहीं, चलो अब मजलिस में चलें।

'नहीं, ठहरो।' उसने वसन्ती का हाथ पकड़ लिया।

वसन्ती रुक गयी। रुक गयी नीचे स्तर की तन का सौदा करने वाली; जिसे इधर उधर अपने तन का सौदा करने के लिये दुकान खोलनी पड़ती है —उसे लज्जा कैसी ? उसकी शर्म तो धूल में मिल जाती है। फिर भी वसन की आँखें इस क्षण शर्म से भारी होगयी थीं. मुख मण्डल विवर्ण होगया। इससे भी बढ़कर आश्चर्य की बात यह है कि पलक मारते ही उसकी आँखों में पानी छलछला आया। वह मुँह

मोड़कर बोली—'मुझे ऐसे मत देखो !'

'क्यों ?'

'मुझे, खांसी का रोग है। कभी-कभी खांसी के साथ साथ खून भी गिरता हैं। शाम की शाम बुखार आता है, देखो न ?' टपटप कर बसन की आँखों से अश्रु झर पड़े। लेकिन साथ ही साथ उसने आँचल से आँखे पोंछ डाली और हँस पड़ी।

'होने दो,' निताई का हृदय उस समय बल्लियों उछलने लगा। असभ्य वीर वंशी की सन्तान रूढ़ पौरुष की भयंकर मूर्ति ग्रहण कर अग्रसर हुआ। उसके इस रूप को देखकर ठाकुर जी अवश्य भय से चीख उठती लेकिन वसन्ती तो झूमर दल की छोकरी है, उसके हृदय में असभ्य बबर मनुष्य के भयंकर से भयंकर स्वरूप को बर्दाश्त करने का साहस है। निताई को अपनी ओर बढ़ते देख कर वह मधुर-मधुर मुस्कुरा रही थी। और जैसे उसके कदम भी उसी की ओर उठ रहे थे।

निताई के बाहु-बन्धन में अपने को बिना किसी प्रकार के डर के समर्पण कर वह मधुर स्वर में गाने लगी:—

बँध गयी राधे प्रेम फांस नें
सांवलिया के संग रे !

निताई की बाहें शिथिल हो आयीं। वह यह गीत सुन कर मुग्ध हो उठा—'कितना सुन्दर !'

वसन्ती ने अपनी बाहों को निताई की गर्दन में डालकर पुनः गाया:—

प्राण प्रिय तुम,
वरण करुँ, मैं मरण तुम्हारे आगे
तुम मेरे कृष्ण कन्हैया,
परूँ मैं तोरे पैयाँ !

आह ! निताई को बहुत भाया; उसकी आँखों में पानी भर आया।

अवरुद्ध कण्ठ से उसने प्रश्न किया—'यह गीत कहाँ से सीखी हो ? यह किसका गीत है ?'

वसन ने हँसकर दोनों हाथ जोड़ प्रणाम कर गीत में हीं उसे उत्तर दिया :—

जो हुआ, सो हुआ अब माफ करो
पड़ूँ पैंया !
रस-सागर में डुबकी लगाये बिन जाने
मरम मोरे सैंया !
पड़ूँ तोरे पैंया !

गीत खत्म कर वह बोली—'महान जन का पद है यह, आज ही तो तुम गा रहे थे—ऐसे ही महानजन के पद्य !'

आकुलता में ही उन्मत्त कवि जाग उठा। वसन के दोनों हाथ पकड़कर प्यार भरे स्वर में निताई बोला—'मुझे सिखाओगी ?'

वसन्ती ने आवेग में निताई को चूम लिया, एक, दो, तीन, चार चुम्बन की वर्षा कर दी उसने।

१७

सवेरे को जब निताई सोकर उठा, तब उसके मुँह के स्वाद से लेकर आँखों की दृष्टि तक कड़वी हो गई थी। सारा शरीर टूट रहा था। निश्वास के साथ एक भयंकर दुर्गन्ध नाकों में समा रही थी। सारा शरीर टूट रहा था। जाड़े का प्रारंभ, और फिर सवेरे-सवेरे इस जाड़े के प्रभात में भी उसकी ललाट पर पसीने की बूँदें चुहचुहा आयी हैं। सर में दर्द हो रहा है। उसकी चेतना जैसे ग्रीष्म की दोपहरी की उतप्त

भूमि की धूल धूसरित आकाश की तरह धूसर हो ।

वसन्ती कमरे में ही थी। वह इधर उधर का काम कर रही थी। कई दिनों के लिये उठने बैठने के लिये फूस और पत्ते की झोंपड़ी, उसी झोंपड़ी को वह करीने से सजाने में व्यस्त है। मेले में उसने कई तस्वीर खरीदी है। आजकल के विकृत रुचि के चित्रकार द्वारा पश्चिमी पोशाक और रुप में अंकित जर्मनी में छपे हुये राधा कृष्ण की प्रेम लीला की तस्वीरें। उन तस्वीरों को वह कमरे के बांसों के बेड़े में लटका रही हैं। रुप का हाट लगाने वालियों के लिये घर सजाना एक नशा है। निताई को उठते देख वह मधुर-मधुर मुस्करा कर बोली—'उठ गये ?'

इस मुस्कान और इस प्रश्न से निताई आज झुंझला उठा। लाल लाल आँखों की पलकें उभार कर उसने उचटे स्वर में उत्तर दिया—'हां !'

इस प्रकार उत्तर पाकर वसन्ती कुछ क्षण तक आश्चर्य से उसकी ओर देखती रही। इसके बाद वह हँसी और बोली—'तबियत ठीक नहीं है, हाथ मुँह धो डालो, चाय पीलो और फिर नहा-धो डालो। तुमने उस दिन मुझे चाय पिलाई थी न। मुझे बहुत आराम पहुँचा था। वैसी चाय तुम्हें आज पिलाऊँगी मैं।'

निताई ने उसे उत्तर नहीं दिया, लड़खड़ाते हुए कमरे के बाहर निकल गया। उसके पैरों के नीचे की धरती जैसे अभी भी काँप रही है।

नित्य क्रिया से फुर्सत पाकर निताई ने कुछ आराम महसूस किया। तालाब में उसने सर के दर्द के लिये अच्छी तरह सर धो लिया है। भीगे बालों से पानी टपक रहा है। और जैसे उसके उतप्त शरीर रूपी गर्म लोहे पर बूँद बूँद पड़ रहा है। वसन्ती उस समय ढेर सा कपड़ा लेकर साफ करने जा रही थी। अब वह रुक गयी, और चाय बना लायी। बिना दूध की चाय में नींबू का रस डाल दिया है उसने। यह चाय निताई को बहुत अच्छी लगती है। एक कटोरा चाय पीकर वह पुनः सो गया।

नींद में नहीं, अशान्त तन्द्रा में वह पड़ा रहा।

'पुआल पर ही सोये हो?'

वसन्ती के यह कहने पर उसने आंखें खोलकर देखा। एक गट्ठर साफ किये हुये भीगे कपड़ों को कन्धों पर रख, सर से पैर तक पसीने से लथ-पथ वसन्ती दरवाजे पर ही खड़ी होकर उसे पुकार रही है—

'उठो, चटाई बिछा दूं, तब सोना। बहन निर्मला, अपने भइया को एक चटाई और तकिया दे जा न! मैं भीगी हूँ।'

निताई आंखें बंद कर लड़खड़ाती आवाज में बोला—'नहीं।'

अब वसन्ती उसके पास आ गई और अधिकार पूर्ण लहजे में बोली—'नहीं, मैं ऐसे नहीं सोने दूँगी, उठो, उठो!'

निताई उठ खड़ा हुआ और आँखें फाड़कर वसन की ओर देखने लगा।

'कहां, कहां है भइया।' हँसती हुई निर्मला कमरे में आयी और चटाई बिछाती हुई बोली—'ओ, मेरे अच्छे भइया, कल तुमने ऐसा गीत गाया कि क्या कहने!'

इतनी देर बाद निताई को विगत रात की याद आयी। उसके दिमाग में जैसे बिजली तड़ित हुई।

इसी क्षण उधर की झोंपड़ी से बूढ़ी निकल कर आयी—'मेरा भइया, सोकर उठ गया?'—दूसरे क्षण ही वह सिहर उठी और बोली—'अरे मैया, तेरी यह कैसी चाल व्यवहार है वसन? एक दिन के लिये बुखार उतरा और तूने स्नान कर लिया।'

बसंती ने मुस्करा कर उत्तर दिया—'सब कपड़े गंदे हो गये थे मौसी, अब नहाने जाऊँगी?'

'इसकी जरूरत क्या थी?'

निर्मला हंसने लगी निर्द्वंद्व हँसी—'प्यार मामूली नहीं है मौसी। भैया ने कल कै किया आर बिछावन गंदा कर दिया था न?'

यह सुन कर बूढ़ी भी मुस्कुरायी और हंस कर उसने वसन्ती से कहा

—'जा जा, भींगे कपड़ों को रख दे और झटपट स्नान कर आ। कपड़े बदल कर तब सूखने के लिये उन्हें डालना।'

निताई ने प्रश्न किया—'मैंने कै की थी ?'

निर्मला फिर पूर्ववत हँस उठी।

गर्दन टेढ़ी कर निताई सोच रहा था—यह गन्ध उसी की कै की है। उसे महसूस हुआ कि उसके सारे शरीर में कै के छींटे पड़े हैं। उसकी गन्ध सांस के साथ अंदर पहुँच कर अन्तर्आत्मा को अस्थिर किये है। अब उसे यह असह्य हो उठा।

'सर में दर्द हो रहा है भइया ? तुम लेट जाओ मैं दबा देती हूँ।' निर्मला ने उसके सर पर हाथ रख दिया। कितना ठंडा और कोमल है उसका हाथ, जैसे मस्तिष्क ठंडा हो गया। उसे बहुत आराम मिला। मगर बिना स्नान किये निताई को चैन नहीं है। वह उठ खड़ा हुआ और बोला—'स्नान करना ही पड़ेगा, मै स्नान कर ही लूँ।'

बसन कपड़े सुखाने के लिये दे रही थी, उसने कहा—'निर्मला देख, बक्स में तेल की शीशी है, बहन, निकाल दे ना जरा।' इसके बाद वह निताई से बाली—'ठीक है, सारे शरीर में तेल मालिश कर लो। मगज ठंडा होगा, शरीर से आराम पाओगे और अगर साबुन लो, तो वह भी ले लो।'

वह जब स्नान करके लौटा तब तक बसन्ती स्नान कर कपड़े बदल कर बक्स खोल कर कुछ कर रही थी। निताई के कमरे में आते ही वह बोली—'आज कैसे सजूँगी, यह देखोगे। वह देखो ऐनक है, कंघा है, स्नो और पावडर है थोड़ा मुँह में लगा लो।'

स्नान के बाद निताई को कुछ आराम मिला है। लेकिन मन अधिक उद्विग्न हो उठा है। छीः उसने क्या किया ? राम राम ! जब वह स्नान कर लौट रहा था तब उसने संकल्प किया था कि यहाँ से वह आज ही भाग जायेगा। ये लोग ऐसे जाने नहीं देंगे तो भागने के सिवा कोई रास्ता नहीं है। सामान, सामान छोड़ो भी ! 'जरा बाजार घूम

आऊँ' वह केवल यह कह कर यहाँ से निकल भागेगा। उसे अपने सामान के लिये कोई दुःख नहीं है, और सामान है भी क्या कुछ कपड़े, एक कम्बल, दो तोशक और तकिये। दुःख है सिर्फ उसे अपनी पुस्तकों के छूट जाने का। अब तो उसकी पुस्तकें कम नहीं हैं, जो बगल में दबायेगा और रफू चक्कर हो जायेगा। मेले में जब जब वह घूमने गया है तब तब उसने दो-चार पुस्तकें खरीदी हैं—कवितावली, नाटक, नौटंकी, रामायण, महाभारत, चण्डी महात्मय, सत्यधीर के गीत—बहुत-सी किताबें उसने खरीद ली हैं। पुरानी पुस्तकों के फटे पन्ने बटोरना तो उसका एक रोग था। मेले में आये हुए थियेटर के इधर उधर चक्कर लगा कर उसने आदि अन्त हीन कई फटे हुए नाटक की पुस्तकें भी इकट्ठी कर लीं हैं। इसके अलावे स्वयं लिखे गीतों की कापी, वह भी तो अब बहुत-सी हो गयी है। जो कुछ वह गाता है सभी को खाते में लिख कर रख लेता है।

एक साड़ी हाथ में लेकर वसन्ती उसे दिखा कर बोली—'उलंग बहार' साड़ी है यह, आज इसे ही पहनूँगी।'

इस बात का मतलब निताई समझ गया है, यानी वसन्ती आज नंगी नाचेगी। वह काँप उठा।

वसन्ती ने कहा—'देखना आज आज किस की जीत होती है। तुम्हारे गीत की या मेरे नाच की।'

निताई ऐना-कंघी यथा स्थान रख कर कुर्ता पहनने लगा। इस समय वह दुविधा में पड़ा है—किताबें भी उसकी रह जायें वह यहाँ से चला जायेगा। अब यहाँ वह रह नहीं सकता।

'कुर्ता पहन रहे हो ? कहीं जा रहे हो क्या ?'

'अभी आता हूँ।'

वसन्ती अचानक निताई को बाहर जाते देख कर आश्चर्य में डूब गयी, बोली—'आखिर सुनो तो कहाँ जा रहे हो ?'

'यहीं, जरा बाजार घूम कर आता हूँ।'

'नहीं बाजार जाने की अभी जरूरत नहीं है। थोड़ा सो लो। देखो थोड़ी सी दारू तुम्हारे लिये रख दी है, पी लो, खुमारी उतर जायगी।'

'नहीं; मैं जरा मन्दिर जाऊँगा।

'मन्दिर ?'

'हाँ'

'अभी कहा, बाजार जाओगे, अब कहते हो मन्दिर जा रहे हो ? कहाँ और क्यों जाओगे ठीक-ठीक बोलो ?

'बाजार जाऊँगा, और राधा कृष्ण के मन्दिर भी जाऊँगा।'

'तो चलो मैं भी चलूँगी।'

निताई झुंझला उठा और चुपचाप वसन्ती के मुँह की ओर देखने लगा।

तन का सौदा करने वाली होते हुए भी उसकी आँखों में एक तीक्ष्ण तेज है। निताई की ओर वह भी देख रही थी, हँस कर उसने कहा—'तुम क्या सोच रहे हो ?

निताई ने कोई उत्तर नहीं दिया।

वसन्ती ने पुनः कहा—मुझे साथ लेकर चलना नहीं चाहते, शर्म आती है ?'

निताई को उससे ऐसे प्रश्न की आशा नहीं थी। इस आकस्मिक प्रश्न से वह चकित हो उठा; घबड़ा कर उसने कहा—'नहीं नहीं शर्म कैसी ? तुम भी क्या कहती हो। चलो—चलो।'

वसन्ती ने कहा—'मगर तुम्हारा मुँह देख कर मुझे ऐसा ही लगता है कि तुम भाग सको तो ठीक है। जैसे कोई तुम्हें रस्सी से बांध कर अपनी ओर खींच रहा है। अच्छा तुम बाहर निकलो मैं कपड़े बदल लूँ।'

निताई अवाक हो गया। वसन्त की दृष्टि केवल नंगी तलवार की धार की तरह ही नहीं है—सुई की तरह सूक्ष्म भी है, जो अन्तर्मन को भेद कर सब कुछ जान लेती है। वह बाहर आकर खड़ा हो गया। किस

प्रकार वह वसन्ती को धोका दे वह यही सोचने लगा।

उधर निर्मला, ललिता, बेहला बजाने वाला और प्रमुख शागिर्द शराब की बोतल लेकर पीने बैठे हैं। भैंस की शक्ल का विशालकाय आदमी है दल की मालकिन बूढ़ी के मन का आदमी; वह बड़ा अजीब आदमी है। उस पर जब कभी निताई की नजर पड़ जाती है, तब वह उसके विषय में शुरू से अन्त तक सोचे बिना नहीं रह सकता है। वह बोलता-चालता नहीं, आँवले की गुठली की तरह रेशे से भरी आँखों को नचाता रहता है, सब की ओर देखता रहता है। राक्षस की तरह भोजन करता है; प्रायः दिन भर सोता रहता है और रात को गले तक दारू भर कर जागता रहता है—सारी रात। उसके सामने टिमटिमाता रहता है एक दीया और एक प्रज्वलित अग्नि कुण्ड। यह भ्रमणकारी परिवार जहां कहीं भी पुरानी साड़ी और धोतियों के कोनों में गाँठ लगा कर ईंट के सहारे तम्बू तान देता है और तन के सौदे का बाजार वहीं लग जाता है, वहाँ आने वालों की दृष्टि उस पर पड़ती है। बहुत बार भयंकर से भयंकर शराबी, नशे में चूर आँखें फाड़ कर उसे देखता है और उसका नशा उतर जाता है और वह शान्त तथा सज्जनता की प्रतिमूर्ति बन जाता है। वह बुत बना एक शराब की बोतल सामने रख कर बैठा है, निर्विकार उदासीनता से भरा। रसोई घर में बुढ़िया पकौड़ियाँ तल रही है। और वह है एक विचित्र छोकरी! क्षण में हँसती है और क्षण में आँखें तरेर कर इतनी गम्भीर हो जाती है कि दल के सभी लोग गुम हो जाते हैं। और फिर दूसर ही क्षण वह हँसने लगती है। वह गीतों का जैसे भण्डार हो। अनगल कहावतें और इतने गीत उसे याद हैं कि वह गाती रहती है। घर के काम-काज में ही वह चौबीसों घण्टे व्यस्त रहती है। जैसे पागल सारथी अनेक जंगली घोड़ों की रास पकड़े रथ खींच कर लिये जा रहा हो। रथ-रथी सारथी सभी कुछ अकेला वही है—स्वयं।

निर्मला ने हँस कर पुकारा—'आओ भइया, गरीब बहन के पास

भी जरा आओ।'

निताई ने उसी प्रकार उत्तर दिया—'यह क्या हो रहा है ?'

'कल लखी बार बीता है, और आज पारण कर रही हूँ—सबेरे सबेरे ! बसन्ती कहां है ? वह क्यों नहीं आयी ?' शराब की बोतल दिखा कर वह हँसने लगी—ही-ही-ही !

निताई ने केवल करबद्ध होकर उससे क्षमा माँग ली।

बेहला बजाने वाला परिहास पूर्ण हँसी हँस कर बोला—'हाँ, हाँ उसे ही पुकारो बसन्ती को। कान खींचने से सर झुकेगा ही।'

निताई के पीछे बसन्ती की आवाज गूँजी—'अभी सर पुन्य करने जा रहा है, साथ ही साथ कान को भी जाना पड़ेगा। अगर तुम काट लो तो, बात अलग है।'

बसन्ती की कई बातें आज निताई को बहुत अच्छी लगीं—'वाह, बड़ी मजेदार बात तुमने कही बसन !' खुश होकर निताई ने पीछे मुड़ कर देखा। कल की तरह भक्ति भाव से भरी, पुजारिनी का वेश बनाये बसन्ती खड़ी है। जब दोनों की आँखें चार हुईं तब बसन्ती ने हँस कर कहा—'चलो' !

रास्ते के दोनों ओर कतार से दूकानें सजी हैं—यहाँ से वहाँ तक।

बसन्ती ने बहुत सारी चीजें खरीद लीं। फल और मिठाइयों में पूरा एक रुपया खर्च कर दिया उसने। एक चवन्नी भुना चार आने के अधेले लिये उसने। उन्हें निताई के हाथ में देकर कहा—'इन्हें जेब में रख लो।'

निताई पुनः चिंता में डूब गया। वह सोच रहा था—इस बन्धन को किस प्रकार काट कर वह मुक्त हो सकता है। मन्दिर से लौटते ही उसे सभी आकर घेर लेंगे। उस समय वसन्त, यह वसन्त नहीं रहेगी। ईर्ष्या की लपटों में तलवार की धार की तरह वसन्त का रूप उसकी

आँखों पर चलचित्र की तरह छा गया।

उसने यह तय किया कि लौट कर वह वसन्ती को कमरे के अंदर भेज कर स्वयं दरवाजे से ही लौट आयेगा। कारण का अभाव नहीं रहेगा। वह अपने किसी गाँव के आदमी को ढूँढने के बहाने वहाँ से एक दो तीन हो जायेगा। जैसे ही वसन ने उसकी हथेली पर अधेले रखे, वैसे ही वह भ्रूकुंचित कर बोला—'इनका क्या होगा?'

'वाह जी वाह! यह जो लूले, लंगड़े अन्धे-काने मन्दिर के पास बैठे हैं किस लिये,? दान करूँगीं!' इसके बाद उसने मुस्कुरा कर निताई की ओर देखा, फिर पूछा—'आखिर तुम सोच क्या रहे हो?'

निताई ने घबराहट में योंही कहा—'कुछ भी नहीं।'

'कुछ नहीं, कैसे?'

'सोच रहा हूं, तुम्हें मैं पहचान नहीं पाया।' निताई हँसा।

वसन्ती हँस कर बोली—'मुझे उन पर बड़ी दया आती है! ओह, कितनी मुसीबत है उनके जीवन में—लंगड़े-लूले, काने, अंधों के जीवन में बाप रे।' यह कहते हुए वह सिहर उठी।

निताई सचमुच इस बार अवाक हो उठा—वसंती की आँखें भर आयीं हैं।

पलक मार कर वसन्ती फिर हँसी—उसकी यह हँसी विचित्र हँसी थी। ऐसी हँसी निताई ने कभी नहीं देखी है। वसन हँसती हुई बोली—'मेरी किस्मत में भी बहुत कष्ट हैं जी! कल ही न तुमसे कहा था; मुझे खाँसी के साथ-साथ रक्त गिरता है! रक्त की के! बहुत पान जर्दा खाती हूं न इसलिये कि रक्त गिरने पर लोग यह समझ नहीं सकेंगे और मैं भी यह जान नहीं पाऊँगी। वह रक्त दीखने पर भय होता है नहीं देखती हूँ तो सब कुछ भूली रहती हूं। मौसी के सिवा यह कोई नहीं जानता। मगर मैं इतने पर भी नाचती हूँ, गाती हूं। शरीर में लोच है, चेहरे पर पानी है। जो कोई भी देखता है वह कहने से नहीं चूकता कि इस दल में है मगर एक छोकरी कमाल की। जिस दिन यह सब

खो जायेगा मुझे कोई पूछेगा। खटिया पकड़ लूँगी तो वहीं छोड़कर लोग चले जायेंगे। हो सकता है मुझे किसी वृक्ष के नीचे ही साँस रहते चील कौवे नोच-नोच कर खायँ।'

कुछ क्षण चुप रहकर वह पुनः बोली—'दूब के रस से अब और कितने दिनों तक फायदा पहुँचेगा। मौसी यह काम गुप चुप करती है, किसी को मालूम होने नहीं देती। इसीलिये रोज रोज नियमित वह भी नहीं खा पाती।'

कभी-कभी बूढ़ी उसे याद दिला देती हैं—वसन्ती, सवेरे रस ले लेना!'

वसन्ती भी कभी-कभी सजग हो उठती है, कभी-कभी ओंठ बिगाड़कर कहती है—'धत्, फेंक दो मौसी। यह भी मुझसे नहीं सहरेगा।'

और जब खाँसी अधिक होने लगती है, तब वह डर से दूर्वा घास की जुगाड़ में चली जाती है। वह मन ही मन में रोती है।

निताई का मन उदास हो गया। उसने एक लम्बी साँस ली। हँसते हुए वसन्ती बोली—अपनी खाँसी और रोग की बातें। निताई को महसूस हुआ कि वसन्ती की क्षीरण हँसी के कारण जो दोनों होंठ खुल गये हैं उनके कोने में एक बूँद खून; लाल मोती की तरह जम गया है। 'लोग मुझे छोड़कर चले जायेंगे' वृक्ष के नीचे मरना होगा, साँस रहते ही मुझे चील कौवे नोच-नोच कर खायेंगे, उसके कानों में यह वाक्य गूँजने लगे। वह चुपचाप सर झुका कर राह चलने लगा।

कई मिनट बाद वसन्त ने पुनः कहा—'उसकी ध्वनि पहले की तरह नहीं है, कुछ सरस स्वर में वह हँसती हुई बोली—'दुपट्टे में गाँठ बाँधोगे—गाँठ?'

निताई ने उसकी आँखों में आँखें डाल दी। निर्निमेष दृष्टि से कई क्षण तक वह वसन को देखता रहा। तलवार की धार की तरह चक-मक करने वाली यह वसन क्षय से एक दिन ओथर लोहे के टुकड़े की

तरह तेज हीन हो जायेगी।

वसन्ती पूर्ववत बोली—'घर में हमें भर निगाह देखना। एक मिनट में देखने से क्या ग्रास मिटेगी!'

निताई हँसा। कोई उत्तर न देकर वसन्ती का आँचल खींचकर अपनी चादर की खूँट में बांधने लगा।

वाह! स्वयं कह कर भी वसन्ती लज्जा से नौ-नौ मन की हो गयी। अपनी साड़ी का आँचल पकड़कर उसने कहा—'नहीं, नहीं, तुम्हें कसम है; धत!'

मगर निताई ने हँसकर कहा—'वसन! गाँठ पड़ गयी है। मैं अगर पहले मरा, तब तुम उसी दिन गाँठ खोल देना और तुम अगर आगे मरीं तो उस दिन मैं ही खोल लूँगा गाँठ।'

वसन का मुख मण्डल जाने 'कैसा कैसा' हो गया।

दोनों होंठ, जाड़े के अन्तिम दिनों में उथली हवा के झकोरे से कदम्ब के पीले पत्ते जैसे थर-थर काँपते हैं, वैसे ही काँप रहे थे। गर्विली, दम्भी वसन्ती जैसे इस क्षण सब कुछ लुटा कर भिखारिन हो गयी हो।

अब निताई बोला—'आओ आओ! देवता के दरबार में मन में क्रोध को स्थान नहीं दो।'

'गुस्सा?' वसन बोली—'मेरा गुस्सा तुम बर्दाश्त कर सकोगे?'

'पैर छू कर तोड़ दूँगा।' निताई हँसा—'आओ चलो।'

'आओ, आओ कवि, आओ! अखाड़े के उन्हीं बाबा जी ने पुकारा।

हाथ जोड़कर निताई ने कहा—'जी भगवन!' इसके बाद वह वसन्ती की ओर देखकर बोला—'वसन प्रणाम करो।'

दोनों ने एक साथ उन्हें प्रणाम किया। इसके बाद निताई ने कहा—'बाबा, इन्होंने ही मुझे आश्रय दिया है।'

'तो यह हैं तुम्हारे प्रेम की गुरुआनी? वाह वाह', बाबाजी हँसे।

वसन्ती ने फल और मिठाइयाँ रख दीं। अपने आँचल से सवा पाँच आने के पैसे गिनकर सब कुछ बाबा के चरणों में रखकर बोली—'आशी

र्वाद दीजिये बाबा ।'

बाबा जी ने दोनों के गले में एक एक फूलमाला पहनादी ।

लौटते समय निताई ने कहा—'मेरी गुरुआनी होना पड़ेगा लेकिन !'

'गुरुआनी !' वसन्ती ने चौंककर निताई को घूरा । वह आश्चर्य में ऐसी डूबी कि इस शब्द के रहस्य से हँस भी न पाई ।

'हाँ मुझे पदावली सिखानी पड़ेगी ।'

'पदावली ? महाजन के पद ?'

'हाँ ।'

वसन्ती चलते हुए गाने लगी—बहुत ही मीठे स्वर में—निताई विमुग्ध हो उठा । गत रात का वही गीत । गीत पूरा करके वसन्ती ने कहा—'प्रथम पाठ दे दिया । अब तुम सबक पढ़ो ।'

निताई ने देखा वसन्ती का मुख-मंडल आंखों की अविरल अश्रु धारा में भीग गया है ।

वसन्ती ने हँसती हुई आँखों को पोंछ लिया, बोली—'महाजनों के पद के गाने से आँखों में पानी भर आता है ।'

घर लौटकर पुकार हुई । शराब का नशा उस समय जम चुका था । निताई और वसन्ती की गले में पड़ी मालाओं में गाँठ बांधकर सब लोग उन्हे घेर कर शंखध्वनि कर रहे थे । चादर और साड़ी के आँचल में पड़ी गांठ खोलने की सुध न तो निताई को हुई और न ही वसन्ती को ।'

निताई हँस रहा था ।

वसन्ती शर्मा गयी थी । वह गाँठ बँधी चादर झपट कर शर्म से दौड़कर घर में चली गयी ।

दोपहर को वसन्ती ने निताई को पुकार कर कहा—'यह लो ।' पीले कपड़े में बँधा एक खाता उसके हाथ में दे दिया ।

'यह क्या है ?' निताई ने खाते का पन्ना उलटा । बड़े-बड़े हरफों

में टेढ़ी मेढ़ी लाइनों में उसमें लिखे थे गीत। गीतों से खाता भरा था।

'यह हम लोगों के गीतों का खाता है। देखो पदावली के गीत पहले पन्ने पर ही लिखे हैं।'

लेकिन निताई को लिखावट जरा भी समझ में नहीं आयी।

वसन्ती ने कहा—'पहला पद है, गौरचन्द्र, का,

'गौरांग के दो पद—

जिसकी है धन सम्पदा वही जाने
भक्ति रस सार।'

इसके बाद दो नम्बर में हैं कीर्तन। वह उसे भी दोहरा गयी—

ढुल-ढुल कच्चे अंग की लावणी
अवनि बह-बह जाये।
इसत् हँसी की उठी तरंग
मदन मूर्च्छा पाये।

निताई ने कहा—'जरा स्वर से गाओ वसन्ती—स्वर से।'

वसंती हँस कर गाने लगी। उसके साथ-साथ निताई भी गुनगुनाने लगा। स्वाद में भी निताई का गला बड़ा मीठा है। गीत खत्म कर वसन्ती ने कहा—'आज तुम्हारा नाम बदल दिया। कालू अब तुम्हें नहीं कहा करूँगी।

निताई बोला—'क्यों ? कालू तो अच्छा नाम है, कालू जो काला हो, घनश्याम की तरह का जो 'कलूटा।'

कौतूहल पूर्ण ढंग से बार-बार गर्दन हिलाकर वसंती ने कहा—'ऊँह ! अब नही—'

'तब, अब क्या कह कर पुकारोगी ?'

'भँवर जी, वसंती के भँवरे !'

१८

भ्रमण करने वालों का दल। नाच और गीत के व्यापार के साथ साथ तन का व्यापार भी करने वालों का दल। इस गाँव से उस गाँव, इस शहर से उस शहर में। कब और किस त्यौहार में कहां से कहाँ जाना चाहिये यह भी इनके नख दपर्ण में है। वीर भूमि से मुर्शिदाबाद, पैदल, बैलगाड़ी से, रेल से' नौका के द्वारा मालदा तक चक्कर लगाकर आषाढ़ के आरम्भ में ये सब लोग अपने-अपने घर लौटते हैं।

बूढ़ी ने कहा—'पहले हम लोग पद्मा नदी के पार तक जाते थे। पद्मा के उस पार हम लोगों की बड़ी इज्जत थी।'

निर्मला ने प्रश्न किया—'पद्मा के उस पार तुम गयी हो मौसी ?'

मौसी पद्मा से उस पार की कहानी कहने बैठती है—'बड़े मजे में पैर पसार कर, सरौते से सुपारी काटते हुए तथा वात रोग का तेल मालिश करते हुए कहती—'पद्मा पार की कहानी—कहती हूँ सुन!' वह दुःख प्रकट कर लम्बी साँस फेंकती है और कहती है—'ओफ़ बेटी तुम लोगों ने क्या देखा और कमाया भी क्या ? वह क्या देश है, वहाँ की मिट्टी क्या है ? सोना-सोना। बारह महीनों लक्ष्मी जैसे अपना भण्डार खोल बैठी है। वहाँ सुपारी खरीदनी नहीं पड़ती। बेटी, सुपारी का जंगल है। बीन लाओ। जितना जी चाहे दोनों ओर। पाट का खेत।' वह अपना एक हाथ लम्बा कर लम्बे लम्बे पाट की बात, खेतों की बात समझाने की चेष्टा करती है। इसके बाद आगे कहती है—'वहाँ एक पाट का व्यापारी है। वहाँ क्या कहने! कितना धन है उनके

पास। इतनी बड़ी-बड़ी नाव और फिर व्यापारियों की नजर ओह! भूले नहीं भूलते वे—'छूट' देते—अठन्नी, रुपया। अरे चवन्नी से कम नहीं। खिलाते भी खूब। छत्तिसों प्रकार के भोजन।'

ललिता बोली—'मौसी, हम लोगों को एक बार ले चलो न उस देश में।'

मौसी कहती—'बेटी अब न वह राम रहे और न वह अयोध्या ही। उस देश में अब हम लोगों का आदर सत्कार करने वाले नहीं रहे बेटी! उस समय हम लोग जाते थे गीत गाने पदावली के गीत। मतलब जो जैसा पसंद करते वैसा ही, और क्या? हम लोगों को तिलक काढना पड़ता, कंठी पहननी पड़ती और फिर सुनने वालों को संतुष्ट करने के लिये भद्दे भद्दे गीत भी गाने पड़ते। आजकल कौन गीत सुनता है जरा तुम्हीं लोग सोचो।

निर्मला जिसे हृदय से चाहती है वह है बेहला बजाने वाला। वह आदमी भी अच्छा है। हमेशा अपने बेहले से ही उलझा रहता है। बेहला की छड़ी के तारों को घिसता रहता है। बेहले का कान खींच खींच कर तार तोड़ता रहता है। और कभी-कभी यत्न पूर्वक उस पर पालिश चढ़ाता रहता है। मगर जितना वह उसकी सेवा करता है, उतना वह बजाता नहीं। मजलिस में बजाता है किन्तु शुभ्र शीतल और निस्तब्ध रात्रि में और घर में जब बाबू आते हैं तब बजाता है। सो उसकी मर्जी पर है बजाये या न बजाये। जब सब लोग सोये रहते हैं तब वह बेहला बजाने बैठता है। अब तो निताई को यह समझते देर नहीं लगती कि वह किस दिन रात को बेहला बजायेगा। निर्मला के घर में जब बहुत से सौन्दर्य पिपासु इकट्ठे होकर एक नारी के तन पर लुब्धे रहते हैं या वहाँ उत्सव का आयोजन करते हैं, तब निताई समझ जाता है कि आज वह बेहला अवश्य बजायेगा।

वह विचित्र प्रकार से बजाता है। निताई ने उसका वह सुर सुना है। लेकिन उसके करीब जाकर बैठ जाने पर फिर वह जमा नहीं

पाता। निताई प्रायः रात को नींद में भी उसका बेहला सुनने के लिए व्यग्र रहता है; उसकी गत का स्वर ऐसा होता है कि निताई की नींद टूट जाती है। जैसे बेहले के तारों पर वादक का हृदय कराहता हो, और उसके स्वर में निताई का विदग्ध मन कराहता हो। लेकिन वह बिस्तर पर ही पड़ा रहता है, लेटे लेटे ही सुनता है। वह भैंस की शक्ल का इन्सान नहीं पहलवान नशीली आँखों को अन्धकार में नचाता रहता है। मगर वह बेहला बजाने वाला उसकी कोई परवाह नहीं करता जैसे उसकी गिनती ही नही है।

बेहला वाले ने मौसी की बातें सुनकर कहा—'उस देश के केवटों का गीत सुना है मौसी ?'

'हाँ, हाँ जरूर !' बहुत मीठा सुर है उनका।' प्रौढ़ा अपने आप ही गुनगुनाने लगी। दो चार बार गुनगुना कर गर्दन टेढ़ी कर वह बोली—'ऊँहू, नहीं आता ठीक।'

बेहले वाले ने जाने क्या सोचकर दो बार बेहले पर छड़ी घुमा दी। बूढ़ी ने कहा—'हाँ, हाँ, यही तो है।'

बूढ़ी के इतना कहते ही वह रुक गया।

निर्मला केवटों के गीत सुनने को व्यग्र थी, बेहलादार के रुकते ही वह झुँझला कर बोली—'यह एक अजीब आदमी है।' बजाना शुरू किया और रुक गया।'

ललिता को प्रिय है प्रमुख शागिर्द। वह बहुत बातें करता है। हमेशा उस बेहले वाले से वह झगड़ता रहता है और कभी-कभी ललिता के साथ भी वह तर्क-वितर्क करने लगता है—राग सुर की बातों पर। ललिता उसे अपने डेरे से निकाल देती है। वह मौसी के पास नालिश करता है, मौसी के विचार में दोषी जो भी हो लेकिन क्षमा ललिता से ही माँगनी पड़ेगी। यह कहना ही पड़ेगा—गलती हो गयी। मैं माफी माँगता हूँ। और कभी भी ऐसा नहीं करूँगा। मैं कान पकड़ता हूँ। और सचमुच में उसे कान पकड़ने भी पड़ते।

निर्मला और वसंती ने उसका नाम रखा है—छछून्दर।

यह ठीक है कि उसे इस नाम से ललिता के सामने कोई नहीं पुकारता क्योंकि ललिता झोंटा-झुरौवल करने पर उतारू हो जाती है। लेकिन शागिर्द कभी नहीं क्रोधित होता, वह केवल हँसता रहता है।

हारमोनियम मास्टर किसी को भी नहीं भाता। जिसे वह भाता है वह उसके पास बहुत दिनों तक टिकती नहीं। जाने उसका कैसा स्वभाव है, जिस औरत से वह प्रेम करता है, उसके रुपये चुरा लेता है। वह बूढ़ा हो चला है। कभी निर्मला और ललिता दोनों ही उसकी परम प्यारी थी। मगर रुपये चुराने के कारण दोनों ने उससे दिल तोड़ लिया है। मगर वह बजाता है बड़ा अच्छा। जितना उसे तालों का ज्ञान है, उतना ही हाथ भी बड़ा मीठा है। कितनी बार वह चोरी कर लड़ झगड़ कर दल से चला जाता है, मगर कुछ दिनों बाद फिर लौट आता है। यह आदमी बड़ा दुश्चरित्र है। रात को बाजा बजाता है, दिन भर चक्कर काटता है—औरतों की खोज में।

ऐसों के बीच ही निताई के दिन कटते जा रहे हैं। इन लोगों के बीच रहते हुए भी उसने एक ऐसा आवरण डाल लिया है, जिससे कि उसे अब कुछ खराब नहीं लगता। यानी सहनशीलता अब उसे संकुचित नहीं करती। रह-रह उसके मन में गीतों की पंक्तियां गूँजतीं हैं। वसंती के द्वारा नये नाम भँवर जी को विषय वस्तु बनाकर उसने एक गीत की रचना की है, मजलिस में वह किसी प्रकार उसी गीत को अवश्य गाता है :—

तुम लोगों ने सुना है क्या
वसंत के भँवर का झंकार !
वंशी और सितार सभी निसार
उसके आगे हैं
उसका गीत है प्रीत का द्योतक
सब गीतों का तार।

भँवर जी नाम बड़ा प्रसिद्ध हो गया है। इसी नाम से वह चारों ओर परिचित है। इस बीच वह बहुत कुछ सीख चुका है, बहुत कुछ संग्रह भी किया है। प्राचीन कवियों के बहुत से गीत उसे याद हैं। हरव ठाकुर, गोपाल उड़िया, फिरंगी कव्वाल, एण्टनी साहब, भोला हलवाई से लेकर निताई के मन ही मन माने और जाने कवि तारण मण्डल तक के गीत उसने संग्रह कर लिये हैं। फुर्सत के समय निताई खेलता जीवन के सपनों का खेल। झूमर दल की छोकरियों के बीच बैठे-बैठे लक्ष्मी देवी की कथा को उसने गीतों में रच लिया है।

लखीवार को उसने वसंती को आश्चर्य में डाल दिया था। वसंती ने जब बातें सुनकर उसे प्रसाद खाने के लिये दिया, तब निताई ने कहा—'कथा सुन चुकी ?'

'हाँ।'

'तो मुझ से भी सुन लो'।'

विस्मय के साथ वसंती ने कहा—'क्या ?'

'लक्ष्मी की कथा !' इतना कहकर ही, अपना हाथ वसंती की ओर बढ़ा कर गीत के स्वर में वह गाने लगा—

नमः नमः लक्ष्मी देवी नमो नारायणी
बैकुण्ठ वासिनी, स्वर्ण सुहासिनी
शतदल पद्म विराजनी, कदले नाम धारणी
सहती नहीं तनिक पाप, इसी से कहते सब चंचला !

वसंती को काठ मार गया है—'कहां से मिला तुम्हें यह ? नयी किताब खरीद कर लाये हो, शायद उसी में है ?

निताई इसका उत्तर न देकर सिर्फ हँस पड़ा था।

'बताओ न ?'

'क्यों बताएँ। सुनो सब कुछ मालूम हो जायेगा।'

'अधम निताई कवि वसन का भँवर,
लक्ष्मी की बन्दना गाये, सुने संसार असार।'

मुखर, गर्विता वसंती आनंद विभोर हो उठी और वह दौड़ी-दौड़ी बाहर गयी तथा तथा सभी को बुला लाई—'सुनो मौसी, तुम्हारे कवि ने लक्ष्मी की वन्दना लिखी है, लक्ष्मी की वन्दना !'

निताई की वन्दना सुनकर दल के सभी लोग आश्चर्य चकित हो उठे। सचमुच वन्दना बहुत अच्छी बन गई है। इसके अलावे उन लोगों के परिचित कवि गीत लिखते हैं, दोहे और लावनी की रचना करते हैं, मगर इस प्रकार धर्म कथा के ऊपर कविता नहीं करते। पुराने जमाने के बड़े-बड़े कवियों ने जितनी जो कुछ धर्म कथा लिख दी है वही आज तक प्रसिद्ध है—इस आडम्बरी जमाने में भी इसीलिये उन्हें लोग पूजते हैं, आज भी। निताई ने उसी प्रकार की रचना की है। उस दिन से उसका सम्मान और भी बढ़ गया है।

तब से इस दल वालों ने उसे व्रत कथा मान लिया है। केवल यही दल नहीं, और भी पाँच-सात दलों के उस्ताद यह वन्दना लिख कर ले गये है। वृहस्पतिवार को पड़ने वाली पूर्णमासी में जब दल की औरतें उसकी लिखी वन्दना गाती हैं, तब निताई थोड़ा गम्भीर हो जाता है। अपने मन में ही वह सोचता है, ऐसी रचना भला कौन कर सकता है, जो देश देशान्तर में जुबान पर चढ़ कर आदर पाती है।

उसकी पुस्तक भी धीरे-धीरे बढ़ गयी हैं। बहुत-सी नयी किताबें उसने मेले में खरीदी है और आजकल तो कलकते से भी वह किताबें मँगाता है। उसे यह सब कुछ सिखाया है दल की मौसी ने। मौसी बहुत कुछ जानती हैं। निताई, कभी-कभी अवाक हो जाता है। वह सचमुच उसे श्रद्धा की दृष्टि से देखता है। 'विद्या सुन्दर' के विषय में उसे मौसी ने ही बताया था। वसंती एक दिन केश सम्भालते-सम्भालते बिना चोटी गुँथे कमरे के बाहर निकल आयी थी। निताई ने उस से कहा था—'तुम इन अस्तव्यस्त बालों में बहुत अच्छी लग रही हो वसंती ! अब चोटी गूँथो।'

मौसी ने उसके यह कहने के साथ ही साथ कड़ी गा दी थी :—

गूँथी वेणियों की शोभा निरखकर
सापिनी, तापिनी ताप से विघर में समाती हैं।

निताई विस्मय विस्फारित नेत्रों से मौसी को देखने लगा था। उसे इस प्रकार देखकर मौसी ने हँस कर कहा था—'विद्या सुन्दर' जानते हो भइये? राय गुणा कर के 'विद्या सुन्दर' को?

वसंती, ललिता, निर्मला उसे उस दिन घेरकर बैठ गयी थीं—'आज तुम्हें 'विद्या सुन्दर' सुनाना ही पड़ेगा मौसी।'

'पूरी याद नहीं बेटी! भूल गयी हूँ।'

'तब तुम अपनी रटना ही रटो। वह तो तुम्हें याद है न? वसंती हँसी में लोट पोट हो गयी थी।

'कौन सी, मेला घूमनी मौसी की कथा?' मौसी भी हँस पड़ी थी। और कहने लगी—

'यह है कथा' मौसी मेला घूमनी की।
कतरनी की तरह चले उसकी जीभ
टिके नहीं कोई उसके समीप !
मौसी एक साँस में कहती जा रही थी—
चलती मटक कर, बोले झटक कर
बड़ी है बहार उसकी झूलनी की।
यह कथा है मौसी मेला घूमनी की।'

निताई ने मौसी से अनुनय विनय के साथ कहा था—'मौसी हमें लिखा दो ये।'

'मुझे पूरी याद नहीं भइये! तुम 'विद्या सुन्दर' किताब मँगा लो। बड़तल्ला के छापे खाने में चिट्ठी डालदो, डाक से आ जायेगी। दाम देकर छुड़ा लेना।' इतना ही नहीं मौसी को छापेखाने का पता तक याद है।

'विद्या सुन्दर' के साथ-साथ उसे 'अन्नदा मंगल' भी मिल गयी है। उस किताब के एक पन्ने पर—दास मलूका दोहावली—का विज्ञापन

पढ़कर उसने उसे भी मँगाया है। उसे पढ़कर उसके मन का एक संशय मिट गया है। 'ननदरी, बोलो प्रीतम से डूबी राज नन्दनी, कृष्ण-सागर में।' और 'गिरी गौरी आयी सपने में, किया चैतन्य, चेतना रूपणी माया के मन में।' और भी बहुत से गीत, भजन भी दास मलूका ने लिखे हैं।

अब उसे अश्लील गीत बहुत गाने नहीं पड़ते। अच्छे गीतों और धार्मिक लोक कथाओं को छन्दों में बाँध कर गाने के कारण वह चारो तरफ विख्यात हो गया है। अब गाली गलौज से भरे गीतों के जवाब में निताई की हँसी मजाक से भरे गीतों को सुनकर लोग उसकी तारीफ करते हैं। कुछ दिनों पहले एक मजलिस में उसका मुकाबिला एक कवि से हो गया। वह बूढ़ा था, फिर भी जितनी उसकी काकुल की बहार थी उससे कहीं अधिक वह मुँह फट और कच्ची जुबान का था। अश्लील गीतों में उस बूढ़े का बड़ा नाम था।

वह भी एक झूमर दल के साथ रहता है। वह बूढ़ा पहले अक्सर ढूँढकर उसे कालू आदि सम्बोधन से लाक्षणिक गीत गा चुका है। यह बड़े मजे की बात है कि जो पहले खड़ा होता है, वह अपने विपक्षी को गाली गलौज देने का मौका पा जाता है। इसके अलावा पहले दिन ही जो निताई ने उसके गाल पर थप्पड़ जड़ा है वह किसी से छिपा नहीं है। इसलिये वह बूढ़ा मौका पाकर गाली गलौज गाना प्रारम्भ कर देता है। निताई का रूप और बसन्ती के चेहरे पर छींटे उछाल कर वह बैठा।

और निताई के मजलिस में खड़ा होते ही बूढ़ी ने कहा—'ओ भइये, थोड़ा चढ़ाओगे ?'

निताई ने हँस कर कहा—'थोड़ी देर बाद, अभी—नहीं।' इतना कह कर वहीं उसने गाना शुरू किया—

'तुम हो बूढ़े उमर दराज' दाँत झड़ गये हँस के, मचाता शोर, रसराग का ज्ञान नहीं गर, गन्दी बातों से मुँह मोर।'

दांत रहा न तेरे मुँह में, बात निकलती साफ़ नहीं

मरने के दिन आ गये करीब, अब बन जा तू शरीफ

निताई की तुकबन्दी को उसके मीठे स्वर ने चार चाँद लगा दिये। मजलिस जम गयी—श्लेष और तीखे व्यंग से। साथ ही साथ वसंती नाचती है। वसंती भी आजकल पहले की तरह गंदी भंगिमा पूर्णनाच नहीं नाचती मगर वह नाचती है विभोर होकर। लोग पसंद करते हैं। श्रोताओं में से कोई एकाध ही अवश्य आवाज कसते हैं लेकिन अधिकांश लोग उसकी तारीफ ही करते हैं। निताई की बारी में दो चार दस अच्छे आदमी भी इकट्ठे होते देखे जाते हैं। निताई अकसर देख कर गीत का रुख ही बदल देता है—

तुम्हारी करते हैं इज्जत तभी तो कहते हैं,

समझा बुझा कर

अब छोड़ो यह गंदी बातें, तुम हो कवि !

इसके बाद वह गाता जिसका भाव होता—तुम तो हमारे प्रेम के गुरु हो, तुम्हीं ने तो हमारा परिचय राधा से कराया, पूर्णिमा की रश्मि शैया हम लोगों के सामने रखी—तुमने ही तो गायी है युगल जोड़ी की प्रेम लीला, और तुम्हारे से राही को, इस बुढ़ापे में यह मति भ्रम देख कर तुम्हें कटु बातें कहने पर बाध्य होना पड़ा है। तुम खुद एक बार सोचो—

तुम हो कवि, रस—राग—रंग के मालिक

और तुम्हीं हो आज बेचते गीत,—

प्रीत के नहीं, जीत के नहीं—अश्लील !

मजलिस की हवा निताई बदल देता।

वसन्ती बिगड़ती है। क्यों बूढ़े को ऐसी बातें उसने कहीं—

वह कहती—'उसे दम दे देकर मारना होगा। इज्जत क्यों की जाये ?'

निताई हँस कर कहता—'नरम-गरम की नीति से काम लेना होगा।' इसके बाद वह उसे समझा बुझा कर कहता—'वह बूढ़ा हो

चला है, उसे जलील करना ठीक नहीं ?'

वसन्ती इस पर कुछ नहीं कहती। निताई पुनः कहता है—'नाराज हो गयी तुम वसन ?'

वह मुस्कुरा कर उत्तर देती—'नहीं'

'तब ?'

'तब सोच रही हूँ, तुमने मुझे भी बदल दिया।'

निताई हँसता है।

वसन्ती कहती है—'वह थप्पड़ याद है ?'

'उस थप्पड़ के बिना चेत मुझे नहीं होता वसन्ती। वह मेरे लिये गुरु का थप्पड़ था।'

आज वसन्ती अपनी दोनों बाहों को उसके गले में डाल देती है। और निताई उसे अपने वक्ष का सहारा देकर उसके सर पर सस्नेह हाथ फेरता है।

अश्लील गीत भी उसे गाने पड़ते हैं। बिना गाए काम चलता भी नहीं। ऐसे आदमियों के बीच उसे गाना पड़ता है, विपक्षी का उसे सामना करना पड़ता है, जिसके आगे अश्लील और गन्दे गीतों का ही महत्व है। वह अपने विरोधी की असभ्यता पर गम्भीर होकर बैठा रहता है। तब बूढ़ी, वसन्ती को अपने करीब बुलाकर उसके कान के पास मुँह ले जाकर कुछ कहती है। इसके बाद वह निताई को सम्बोधन कर कहती :—

'ओ भइये' देखो वसन्ती तुम्हें पुकार रही है।'

निताई चौंक जाता है। इसके बाद वह शहर चला जाता है—वसन्ती के पास पहुँचकर वह अपना हाथ आगे बढ़ा देता है। वसन्ती फौरन एक ग्लास में शराब भरकर उसकी ओर बढ़ा देती है। निताई

एक ही साँस में गले के नीचे उतार कर मजलिस में जम कर बैठ जाता है।

इसके बाद जैसे जैसे रात बढ़ती, वैसे वैसे मजलिस मतवाली हो उठती हैं—अश्लील और गन्दे शब्द जाल में फँसकर। हर बार गाने के लिये-खड़े होने के पहले वसन्ती उसे एक ग्लास शराब देती है। वह पीता है। कभी कभी अपने हाथ से भी ढालकर स्वयं पीता और वसंती को पिलाता है। वसन्ती हँसती है। उस दिन मजलिस में कुछ बाकी नही रहता। निताई के खून की धारा तथा उसका दिमाग शराब की तेजी पाकर उभर जाता—उसकी वंश-परम्परा की विशेषता—जहर! तब भाषा, भाव, भंगी में कुत्सित से कुत्सित विचारों को व्यक्त करने में उसे तनिक भी लज्जा नहीं मालूम पड़ती। सिर्फ इतना ही नहीं, उस दिन वह इतना उग्र हो उठता कि मामूली कारणों से ही मार पीट पर उतर आता है।

ऐसे दिनों में बूढ़ी-दल के सभी लोगों को सावधान करती है—'आज हाथी मतवाला हो गया हैं। तुम लोग जरा सम्भले रहना। तुम तो सभी कहते हो कि वह नरम हैं, विनम्र है।'

निर्मला हँसकर कहती—'इस मतवाले हाथी का फीलवान कौन है मौसी?'

बूढ़ी हँसती है और वसन्ती की ओर देखती है। वसन्ती भी हँसती है। ऐसे दिनों में वसन्ती की हँसी एक अजीब प्रकार की होती है।

निर्मला जोर से हँसती है, कहती—'क्यों री, हँसते-हँसते तू पागल न हो जाना।'

वसन्ती भी शराब के नशे में चूर—उसकी आँखें लाल-लाल! वह हँसती इसलिये कि ऐसे दिन उसके जीवन में बहुत कम आते हैं। ऐसे दिनों में ही निताई उस की पकड़ में आता है, वसन्ती को हृदय से लगाकर भी उसे और निकट-निकटतम पाने के लिये व्यग्र हो उठता है। अपने बलिष्ट बाहुओं में कसकर उसे उठा लेता है—धरती से ऊपर

गोद में वसन्ती को उठाकर कभी-कभी नाचने लगता है। और एक विचित्र आदत है उसकी। वह यकायक सोकर कहता—वसन्ती नाचो, हमारी छाती पर खड़ी होकर काली की तरह नाचो ! जब तक वसँती बिल्कुल निर्जीव होकर लुढ़क न पड़े तब तक उसे फुर्सत नहीं। ऐसे दिन उसके जीवन में बहुत कम आते हैं जबकि वह बहुत चाहती है।

सहज शाँत निताई का यह एक और रूप है—वह प्रेम, प्यार से सहज-सम्भाल कर वसन्ती को रखता है, उसके हृदय को उद्वेलित करता है। लेकिन वसन्ती के वातावरण से ऊँचाई पर खड़ा रहता है। उस समय यदि वसन्ती उसे अपनी बाहुओं में जकड़ लेती है तब भी वह उसकी ओर अपने हाथ नहीं बढ़ाता, और न ही उसे धकेल कर अलग ही करता है। उसके सर या पीठ पर हाथ से सहला देता है—जैसे वसन्ती बच्ची हो। लेकिन उसकी उपेक्षा भी नहीं की जा सकती। इतने आदर और स्नेह से उसका हृदय भरा है।

वसन्ती रुठती है, झुँझलाती है और रोती है।

निताई हँसकर उसकी आँखों के आँसू पोंछ देता है और कहता है 'तुम्हारे रोने से मुझे कष्ट पहुंचता है वसन्ती !'

इसके बाद गुनगुनाते हुए गाता है।

जब आँखें भर आती तेरी
मन मेरा भर आता है।

वसन्ती अब खुश होती। उसके होठों पर हँसी फूटती। अपनी आँखें पोंछकर वह कहती—'वाह, इसे कापी में नोट कर लो, पूरा करो।'

अभी-अभी—उसी दिन। निताई ने जो गीत गाया उसे सुनकर वसन्ती का रोना और भी बढ़ गया।

निताई को वसन्ती का पहले वाला रूप याद आया, जिस वसन्ती की आँखों में प्रेम की दृष्टि है, उसी वसन्ती की आँखों में आँसू !

निताई ने एक गीत गाना शुरू किया—

कहाँ खो गया तुम अपने से

आज तुम्हीं से पूछूँ ?

जिन नयनों में आग भरी थी

उन नयनों में आंसू !

यह गीत सुनकर वसन्ती का रोना बढ़ गया था। जाने कितने लाड़ प्यार के बाद वह शांत हुई।

लेकिन दूसरे दिन सवेरे उठते ही उसने कहा—'तुम उस गीत को पूरा करो। मैं सीखूँगी तब कहीं उठूँगी।' इसके बाद बोली—'तुम्हें मैंने थप्पड़ मारा था इसे तुम आज तक नहीं भूले ?'

निताई बोला—'भगवान की शपथ, वसन्ती !'

बीच में ही वसन्ती बोल उठी—'अरे मैं तो मजाक कर रही हूँ।'

वसन ने भी उसे बहुत कुछ सिखलाया है। पदावली के साथ-साथ उसने उसे टप्पा सिखाया है। टप्पा निताई को बहुत आता है। यही तो असली गीत है। पदावली के 'प्रेम' में और टप्पा की मोहब्बत में अंतर है।

उसे मैं भूलूँ कैसे हाय

जो प्राणों के अधिक निकट है,

या—

प्यार करना है, प्यार किया इसलिये नहीं

प्यार को प्यार से पाना है इसलिये खो गया कहीं।

निताई की बड़ी इच्छा है कि वह ऐसे ही गीत लिखे जिन्हें कि उसके मर जाने के बाद गवैये गायेंगे और वाह-वाह कर उठेंगे। चौबीसों घण्टे उसके मन में गीत गूँजते रहते हैं।

और रह-रहकर एक दिन ऐसा भी आता है जब निताई सब कुछ से उदासीन हो जाता है।

गाँव की टेढ़ी मेढ़ी पगडंडी पर दोपहर की धूप की छटा में उसकी आँखों के आगे एक स्वर्ण विन्दु चमक उठता है। इसी समय किसानों की पत्नियाँ सर पर दूध का लोटा रखकर खेतों में जाती है। दो-दो चार-चार के झुण्ड में। इस स्वर्ण बिंदु की चमक आँखों में पड़ते ही वह उदास हो उठता है।

उसे याद आता काश फूल की फुनगी पर सोने की बूँदे! ठाकुरजी की याद आती। यह सब कुछ उसे अच्छा नहीं लगता। उसकी इच्छा होती—वह आज ही लौट जाय उस गाँव में और कदम्ब की छांव में बैठकर रेल की पटरियों की ओर देखता रहे। उसे याद आते पुराने गीत।

मगर दूसरे क्षण ही वह कह उठता—'नहीं, ठाकुर जी तुम सुखी रहो, तुम्हारा संसार हरा भरा रहे।

अब लौटकर वहाँ जाने की फुर्सत भी उसे कहाँ मिल सकती है। पाँच दिनों तक फिर मजलिस, इस मरतबे झूमर दल के कवि से उसका मुकाबला नहीं है। जबरदस्त आदमी से पाला पड़ा है। तारन कवि, महादेव और नोटन की तरह के आदमी से। एक मेले में कवि दरबार के लिये केवल उसे ही बुलाया गया है। झूमर दल का उसमें कोई हाथ नहीं। फिर भी उसने कहा है कि शागिर्द का काम कोई और कर नहीं सकता। अतएव झूमर दल के लोग भी जायेंगे।

इसके बाद यह दल यहाँ से डेरा उठाकर कहीं और जायेगा। निताई यदि चला जायेगा तो इन बेचारों का काम कैसे चलेगा। यह तो उनके साथ विश्वासघात करना हुआ। और इसके अलावे वसन्ती जो है। वसन्ती को उसने वचन दे दिया है कि वह इस जीवन में उसे छोड़कर नहीं जा सकता। उसे याद आती है गठबन्धन की बात। और उसके कानों में गूँजता है, 'जो पहले मरेगा वही गाँठ खोलेगा।' यह सोचकर

ही वह सिहर उठता है। छी: वसन्ती की मृत्यु कामना वह कर रहा है ? नहीं नहीं। ठाकुर जी तुम दूर बहुत दूर ही रहो। सुख से रहो—हो सकता है अब तुमसे आँखें चार ही न हों। वह वसन्ती का भँवर है, जहाँ वसन्ती है वहाँ वह है, वसन के सिवा वह और कही नहींरह सकता। वसन्ती अच्छी हो जाये, वसन के साथ ही वह जीवन बिता देगा। जिंदगी अब जितनी बाकी है, इतने में तो वसन्ती के प्यार से ही नहीं अघा सकता। फिर वह अब ठाकुर जी को प्यार करे ? इसी प्रकार तो एक दिन ठाकुर जी को छोड़कर चला आया था वसन्ती की गोद में और फिर वसन को छोड़कर वह जाये ठाकुर जी के पास ? नही यह ठीक नहीं है।

मगर उसे यहाँ अब अच्छा नहीं लगता। वह दल के लोगों से दूर जाकर एकांत में बैठा रहता है। और कभी स्वयं से चौंककर लौट आता है, कभी दल का कोई उसे पुकारने के लिये पहुँच जाता है और उसे पकड़कर ले आता है।

वसन्ती कहती है—'देखो, अब तुम पागल हो जाओगे।'

निताई किंकर्तव्य विमूढ़ता में ही हँसता है—'क्यों क्या हुआ ?'

'सवेरे-सवेरे कहाँ चले गये थे ? खाना खाने का समय हुआ···?'

'बहुत अच्छा भाव मन मे आया था वसन। सुनो—'

'नहीं, पहले सुनो।' इतना कह कर ही उसने गाना शुरू कर दिया :—

मिटी न आस प्रेम की
हाय जीवन व्यर्थ हुआ !

वसन मुग्ध हो उठी। वह उसके साथ यही गीत सीखने बैठती। दोनों खाना भूल जाते।

वसन में बहुत परिवर्तन हुआ है। अपने को बनाना वह भूल गयी है। शराब भी वह अब बहुत कम पीती है। दूब का रस पहले नियमित रूप से पीने की सुध उसे नही थी। अब पहले रस पीलेती है तब दूसरे कार्यों

में हाथ लगाती है। उसका स्वास्थ्य भी पहले से अच्छा है। सूखे और पीले चेहरे पर चिकनाहट तथा रक्त की लाल आभा दौड़ने लगती है। बोली पैनी है, लेकिन जलन नहीं। अब वह पहले की तरह तेज तलवार की धार की तरह खिल खिलकर हँसती नहीं है। मुस्काती है–मन्द, मधुर मोहक मुस्कान।

ललिता और निर्मला, मजाक करने में कुछ उठा नहीं रखती। बसन अब निताई का कोई काम करती है तब ललिता निर्मला को अथवा निर्मला ललिता को कहती—'हाय–सखी, अँत में—'यानी जिस प्रेम को एक समय वसन मुँह बिगाड़कर घृणा करती थी, उसी के जाल में फँस गयी अंत में !'

वसंती क्रोधित नहीं होती, मुस्कुरा कर कहती—'तुम लोग बड़ी बदमाश हो।'

बूढ़ी हँसती है। बीच बीच में वह भी कुछ मजाक कर लेती।

'तो वसंती फूल फूट गया। भँवर नाम बदल कर उस्ताद का कोई नाम और रखो।

वसंती हँसती जैसे दामिनी दमकती हो।

दिन भर वसंती अच्छी रहती लेकिन शाम के बाद उसका मन उग्र हो उठता। तन के सौदे का यह समय होता। शाम का अँधेरा होते ही तन के खरीदारों का आना-जाना शुरू हो जाता। औरतें तो अपना शृंगार कर दरवाजे पर बैठती रहतीं। वे तीनों एक साथ ही बैठतीं या अपने अपने डेरे के सामने पीढ़े पर बैठतीं। अर्थात इस समय हँसी मजाक या और कुछ कहना-सुनना तीनों की सीमा में ही सीमित रहता। आने जाने वाले पुरुषों के प्रति उनका भाव बे भाव का रहता। इशारे में वे तीनों आपस में गंदे मजाक करतीं।

निर्मला मधुर आवाज में पुकारती—'नी–व, नी-स, नि-न्त ! यानी नि:शब्द का योग कर वह पुकारती वसंती को।

वसंती उत्तर देती—'नी' का मतलब ?'

इसी नी शब्द को आधार बनाकर गन्दे, अश्लील शब्दों की बौछार शुरू होती। किसी एक दिन की व्यभिचार और विलासपूर्ण कहानी। जिसे सुन कर सभी हँसती हँसती लोट पोट हो जाती। जैसे सामने खड़े लोगों के मन को वह समझा बुझा लेती कि तुम्हारे जनम जनम की साथिन मैं हूँ। और कोई नहीं।

आगे ऐसी बातों में सबसे अधिक पटु थी वसंती। लेकिन अब वह जैसे इस पटुता को भूलती जा रही है। चुपचाप गम्भीर बनी वह बैठी रहती है।

और निताई इनसे दूर इस वातावरण से दूर बैठा रहता है, अपनी लालटेन जलाकर पुस्तकों में खोया रहता है, पढ़ता है। वसंती के डेरे में आगन्तुकों का कहकहा गूंजता है। निताई रामायण पढ़ता है, कृष्ण चरित्र पढ़ता है और गीत भी लिखता है।

और कितनी दूर, मेरे जीवन का अन्त

या—

मेरा कर्म फल
दयाकर पूरा करो हरी
जनम हो सफल !

कभी वह बैठा-बैठा सोचता। सोचता बड़े बड़े कवियों की बातें— जो सचमुच के कवि थे, झूमर दल में जो गीत नहीं गाते थे। आजकल तो उसकी किस्मत भी पलट रही है। दो चार बयाने उसे भी मिलने लगे हैं। इसी समय वह इस दल से निकल कर भाग सकता है। लेकिन बन्धन है—बंधन कैसा और कौन—प्रेम ! प्रेम नहीं, नहीं वसन्ती ! वसंती तो तैयार नहीं होती ! वह सब कुछ जानती है, सब कुछ समझती है। फिर वह भी तो यह दल छोड़कर जाना नहीं चाहती। जाने क्यों ? वह अपने आप ही हँसता है।

'ऐसे क्यों हँसते हो ? अपने आप ?'

निताई उसकी ओर देखता है—बेहला बजाने वाला उसकी ओर

देख कर पूछता है—वह थोड़ी दूर पर बैठा है—वह अपने बेहले से उलझा है। वह बेहले के तारों पर छड़ी फेरता है, जैसे उसका स्वर कभी शेष नहीं होगा। तार टूट जाता है और वह उसे बनाने के लिये तत्पर होता है।

निर्मला के डेरे में कह कहा गूँजता है।

और बेहला वाला बेहले पर छडी चलाता है। जब तक रात सुनसान नहीं होती, तब तक उसका स्वर नहीं जमता। मध्य रात पार होते ही उसका हाथ खुल जाता है। एक अजीब प्रकार का स्वर वह बजाता है,

—एक लम्बी सकरुण ध्वनि तारों से निकालता है, जैसे उसके अंतर से व्यर्थ जीवन के लिये उसांसे निकालती हो। रह रह-कर वह इतने कोमल स्वर पर छड़ी ले जाता है कि सारा शरीर बर्फ की तरह जम जाता है। लगता, जैसे सब कुछ निस्तब्ध हो चुका है, अब कुछ शेष नहीं रहा।

शार्गिद तर्क करता है हारमोनियम मास्टर से।

उसके ऊपर किसी की छाया नहीं पड़ती। उसके प्यार को सहलाने वाला कोई नहीं है। वह चोर है, उसे प्यार करने पर वह चोरी करता है। हहाकर हँसता है—और हारमोनियम बजाता है। शार्गिद तर्क का जबाब देता है। थोड़ी देर बाद उठता है और शराब पीकर लौट आता है। लेकिन बेहले वाले और शार्गिद के लिये भी वह अवश्य लाता है। इसके बाद नींद आती और वे सो जाते हैं।

शार्गिद अभी ललिता के डेरे में पहुँच गया है। वहां वह लड़ाई कराने की चेष्टा करता है।

भैंस की शकल वाला पहलवान धूनी के सामने बैठा रहता है। बूढ़ी डेरों के दरवाजों पर सर्तक दृष्टि डाले, बैठी सुपारी काटती रहती है और खरीदारों के आने पर लड़कियों को पुकारती है, उन्हें दिखाती है, सौदा करती है, और पट जाने पर रुपये ले लेती है। चोरी से शराब बेचती है। इस समय यह बूढ़ी अपनी हस्ती स्वतन्त्र रखती है, गम्भीर

बातें बहुत कम करती है। उसकी पलकें तनी ही रहती हैं। दल का प्रत्येक व्यक्ति स्वतन्त्र रहता है। वसन्ती बहुत लड़ती झगड़ती है। वह वसन्ती को डाँटती रहती है।

'अरी ओ वसन्ती! यह क्या? लड़ क्यों रही है।'

'लड़ूंगी। मैं शराब नहीं पिऊँगी।'

'थोड़ी बहुत तो पीनी ही पड़ेगी। ऐसा किये बिना काम कैसे चलेगा? लोग तेरे पास क्यों आयेंगे?'

'नहीं आयें, मुझे लोगों की जरूरत नहीं।'

'जरूरत नहीं।'

'नहीं, नहीं, नहीं।'

'अच्छा, तो कल सवेरे तू यहां से रास्ता ले। ऐसी की मुझे भी जरूरत नहीं है।'

केवल वसन्ती नहीं, निर्मला, ललिता भी थक कर हांपती हैं। वे भी कहती हैं—'ओह, अब शरीर साथ नहीं देता।'

लेकिन मौसी, मौसी पत्थर है। उसका तो एक ही उत्तर है,—'तब भाई मेरे यहाँ गुजर नहीं।'

सभी का मुँह बन्द हो जाता है वसन्ती का मुँह भी बन्द हो जाता है। आश्चर्य की बात है, और दस-पाँच दिनों तक अगर व्यवसाय मंदा हो जाता है, तब वह चिंतित हो उठती है। आपस में ही बातें होती :—

'अब क्या होगा? आमदनी नहीं; मन नहीं लगता।'

'वसन्ती!'

'क्या?'

'यह कैसा देश है रे?'

'कौन जाने। पांच रुपये रखे थे—नक छवि गढ़ाऊँगी! लेकिन चार रुपये उसमें से भी खर्च हो गये।'

मौसी उन लोगों को पुकार कर कहती है—'अच्छा आज जरा अच्छी तरह से शृंगार कर, गाँव की हटिया में घूमने चलेगें।'

सब की सब उत्साहित होकर साबुन लेकर तलाब पर चली जाती हैं। वहाँ से लौट कर स्नो, पाउडर, बिंदिया और कंघी आइना लेकर शृंगार करने बैठती हैं।

बूढ़ी धुली हुई सफेद साड़ी पहनती हैं। गालों में पान भर कर उन लोगों को लेकर बाहर निकल जाती है।

इस तन के सौदे में भी इस बूढ़ी का स्वार्थ है। इस आय में तीन हिस्से होते हैं। दो हिस्से मिलता है तन कुटवाने वालियों को और एक हिस्सा लेती है बूढ़ी—ऐसा ही नियम है। गीत की मजलिस में भी इसी प्रकार आमदनी बंटती है। इसकी आमदनी के आठ हिस्से होते हैं, सभी को एक एक मिलता। जिससे आमदनी नहीं होती, उसे बूढ़ी दल से निकाल बाहर करती है।

आने वाले लोगों को अपनी आँखों की ओट होने नहीं देती। पैरों की आहट पाते ही वह कहती—'कौन है? आओ आओ? शर्म कैसी? डर किस बात का?'

आगान्तुक के सामने आने पर वह उसके लिये एक मोढ़ा बढ़ा देती, पान खिलाती—इसके बाद लड़कियों को पुकारती—'अरी वसन, निर्मला इधर आ। अरी ओ ललिता पैरों में मेंहदी रचाये है क्या? आ, आ!'

उस दिन वसन्ती ने कहा—मेरी तबियत कैसी लग रही है मौसी।'

'अब क्या हुआ तुझे? कुछ नहीं, होगा क्या? इधर तो आ। थोड़ी सी दारू पीते ही शरीर चंगा हो जायेगा। आ, आ न इधर।'

आह्वान और आदेश। मौसी से मुँह मोड़ने का कोई उपाय नहीं है। वसन्ती आयी—साफ सुथरी वेश-भूषा में, अपने चारों ओर की हवा को सुगंधित बनाते हुए एक आदमी मौसी के पास खड़ा था। मौसी ने कहा—देखें, तेरा शरीर। और उसने शरीर को यों ही इधर-उधर

टटोल लिया फिर बोली—'तुझ से तो मेरा शरीर गर्म है री ! देखो तो भला, कहती है तबियत खराब है ! जरा दारू पिलानी पड़ेगी तुझे।' फिर यकायक स्वर में मधुरता लाकर बोली—'मेरे पास है रे !'

तन का सौदा करने वाली नारी। साफ सुथरे कपड़ों में उस आदमी को देखकर वसन्ती का अभ्यस्त अंतर्मन जाग उठा और आँखें मटका कर तथा लोच लचक के साथ उस आदमी का हाथ पकड़ कर वह कमरे में खींच कर उसे ले गयी।

मौसी हँसती है। वह जानती है कि एक मरतबा जहर जहां गले से नीचे उतरा कि उसे फिर अमृत के समुद्र में डुबा देने पर भी बचाया नहीं जा सकता। वसन्ती की तबियत अच्छी हो गयी है।

आदमी के चले जाने पर वसन्ती का नशा उतर जाता है। शराब के नशे की प्रतिक्रिया की तरह ही एक प्रकार का नशा जग जाता है। नशे को महसूस करते हुए वह लेटी रहती है, रोती रहती है। ऐसी अवस्था में वह प्रतिज्ञा करती है, कल ही, कल ही वह निताई को साथ लेकर यहां से चली जायेगी। आज भी उसने प्रतिज्ञा की। लेकिन भागना सहज काम नहीं है, कहां जायेगी ? इस मौसी, इस ललिता और निर्मला को छोड़ कर उसका और है कौन।

सात दिनों के बाद।

वसन्ती थर थर कांपती हुई आयी। मौसी से बोली—'मौसी !'

वसन्ती के कण्ठ स्वर से मौसी चौंक उठी—बहुत दिनों के बाद पुरानी वसन्ती प्रकट हुई—'क्या है, वसन ?'

कान के पास मुँह ले जाकर फुसफुसाहट में बोली, वही पुरानी वसन बोली—'दवा, मौसी। मुझे उल्टी हुई है।'

'उल्टी ? कफ ?'

'नहीं, नहीं नहीं' वसन्ती की आँखें चमक रही थी—उसकी आंखों की ओर देखने के बाद बूढ़ी को अपनी गलती महसूस हुई और साथ ही साथ वह उसे आश्वासन देती हुई हँस कर बोली—'इसके लिये

चिंता की क्या बात है ? आज ही तैयार कर दूँगी । तीन ही दिनों में अच्छा हो जायगा, मछली नहीं खाना ।'

इन लोगों के जीवन का यह एक अध्याय है । यह अध्याय अनिवार्य रूप से आयेगा ही । मनुष्य के जीवन में, कब, किस प्रकार इस बीमारी ने घर बनाया—यह विशेषज्ञों की खोज का विषय है । लेकिन इन लोगों के लिये यह बीमारी अनिवार्य है । सिर्फ अनिवार्य ही नहीं, ये इस बीमारी में भीतर ही भीतर सड़ कर भी अपना बचा हुआ जीवन व्यतीत करती हैं । मनुष्यों के बीच बिखरती हुई जीवन की राह पर अबाध गति से चलती जाती हैं । डाक्टर और वैद्यों से कभी इलाज नहीं करातीं । अपने आप दवा करती हैं । इन लोगों में नाचने गाने की परंपरा की तरह स्वयं इलाज करने का अभ्यास भी बहुत दिनों से चला आ रहा है। फलस्वरूप बीमारी बाहर से अंदर चली जाती है और रात दिन रक्त स्रोत के अंदर प्रवाहित होती रहती है । अभागिनों के जीवन को धूल धूसरित धरती पर गिरा कर अर्धमृत कर चली जाती है । इन बातों को ये नहीं सोचतीं । यही सभी बीमारियों की जड़ है इस पर कभी ध्यान नहीं देतीं । केवल बीमारी होने के समय तत्काल ये आकुल हो उठती हैं ।

वसन भी व्यग्र होकर मौसी के पास आ गयी । मौसी रोग का इलाज जानती है ।

इस रोग का समाचार इनके लिये लज्जा की बात नहीं हैं । केवल छुआछूत का ख्याल रख कर सावधानी से थोड़ी घृणा और एक दूसरे से अगल बगल होकर उठने बैठने चलने फिरने का आभास मिलता है ।

अंगोछा और साड़ी ठीक ठाक कर निर्मला तथा ललिता आयीं ।

वसन्ती ने किसी को भी नहीं देखा ।

निर्मला उसके करीब आकर बोली—चोटी गूँथ कर नहीं रखनी चाहिये । आओ खोल दूं ।'

निताई कमरे से निकला । बीती रात के कई जूठे ग्लास उसके हाथ

में थे । शायद वह उन्हें धोने जा रहा था ।

वसन्ती ने निर्मला से कहा—'उसे मना कर ।' वह आज निताई से आंखें मिला कर बातें नहीं कर पा रही है ।

निर्मला बोली—'भइया–भइया—।'

निताई ने हँस कर कहा—'क्यों वसन्ती ? तुम कुछ चिंता मत करो । मुझे कुछ नहीं होगा ।'

निर्मला अवाक रह गयी ।

तीन दिन की जगह नौ दिन कट गये । वसन्ती बिस्तरे पर पड़ी छटपटाती रही । उसके अंग अंग में छोटे-छोटे फोड़े निकल आये हैं, जैसे शरीर पर स्याही उड़ेल दी गयी हो । सुनसान रात मे बत्ती जला कर सिरहाने बैठ निताई पंखा झल रहा था । ऐसी अवस्था में औरतों के रोग की सीमा नहीं रहती । उसे प्यार करने वाले पुरुष उन्हें छोड़ कर गले जाते हैं कोई-कोई तो दल से भाग जाते हैं और रोगिणी अकेली पड़ी रहती है । जितनी भी सेवा और सुश्रुषा सम्भव होती है वे करती हैं—दल की अन्य छोकरियां !

किंतु निताई वसंती के सिरहाने बैठा है—उसके मुंह पर की विनम्र हँसी में जरा भी फर्क नहीं आया है ।

बाहर रात निःशब्द गति में प्रथम प्रहर को पार कर दूसरे प्रहर के समीप पहुँच रही है । यकायक रात के सन्नाटे को भेद कर एक स्वर गूँज जाता है । जागते रह कर भी निताई ऊँघ रहा था । स्वर सुन वह जाग उठा । वह बिना हँसे नहीं रह सका । अपने आप में खोया बेहला बजाने वाला बेहले के तारों को छेड़ बैठ था । क्योंकि आज निर्मला के घर में एक मेला लगा है । शाम से ही निताई यह स्वर सुनने को व्यग्र था । ओह बहुत खूब ! विहाग है शायद ! सुनने से ही ऐसा लगता कि रात के सन्नाटे और अंधेरे में सब कुछ खो गया है ।

'अरे, अरे, छीः छीः'—वसंती जाग कर उठ बैठी ।

चौंक कर निताई बोला है—'वसंती ? यह क्या, लेटी रहो ।'

'ओह, उसे मना करो, वह ऐसे न बजाये।'

'अच्छा नहीं लग रहा है ?'

हँसती हुई वसंती ने कहा—'नहीं, मेरे हाथ पैर जैसे बर्फ की तरह ठंडे होते जा रहे हैं।'

और बेहला की लय में एक दीर्घ करुण स्वर काँपने लगा, जैसे वह भी रात के अंधेरे में मिलता जा रहा हो।

१६

करीब एक महीने में वसन थोड़ी अच्छी हुई। वह पहचान में नहीं आती। घृणित और कुत्सित रोग उस के यौवन को लूट कर ले गया। जहरीली जीभ से चाट चाट कर किसी हिंसक ने उसके तन की गोराई को समाप्त कर दिया है। उसकी ओर देखने पर ऐसा लगता—जैसे किसी ने उसके शरीर पर आग की भस्म लपेट दी हो। उसके सर के लम्बे, चिकने और मुलायम बालों में जट्टा पड़ गया है। केवल रूप रंग नहीं—उसके शरीर का गन्ध-रस सभी तो नष्ट हो गया है। वह आज एक काँटे की तरह होगयी है। वसन्ती के गर्व करने वाले रूप रंग में यदि कुछ बचा रह गया है तो वह हैं उसकी दोनों धंसी हुई आँखें। शान्त और गति-हीन-सी। वह चुपचाप बैठी रहती है। उसकी आंखें जलती रहती हैं—राख के ढेर में दो टुकड़े जलते हुए कोयले की तरह।

उस दिन मौसी ने कहा—'वसन्ती आज अच्छी तरह से तलवे और तलहठी में हलदी लगाकर नहाले।'

वसन्ती अपलक दृष्टि से उसकी ओर देखती रही। उसने कोई उत्तर

नहीं दिया। जरा भी हिली-डुली नहीं।

मौसी ने पुनः कहा—'रोग की गन्ध मर जायेगी। चिट्टे भूसी की तरह उड़ जायेंगे री! आराम मिलेगा।'

वसन्ती फिर उसी प्रकार चुपचाप बैठी रही।

मौसी अब उसके पास आ गयी और उसे खींचकर, उसके शरीर की साड़ी के अन्दर हाथ ले जाकर, आदर और यत्नपूर्वक सारे शरीर पर हाथ फेरने लगी। ललिता को पुकार कर बोली—'ललिते, कटोरी में थोड़ा तेल गरम करलो और थोड़ी हल्दी!' इसके बाद उसने पुकारा निताई को—'अरे भइये! ओ भइये तुम कहाँ हो?'

निताई कमरे में वसन्ती का बिस्तर झाड़ने पोंछने में लगा था। उसने बिस्तरे को बाहर धूप में सूखने के लिये डाल दिया। तब बोला—'मौसी, तुम मुझे कुछ कह रही हो?'

हँस कर बूढ़ी ने कहा—'भइये! तुम आदमी हो, एक ही आदमी। वसन्ती की कँघी और तेल की शीशी दे दो बाबू। सर में जट्टा पड़ गया है, छुड़ा दूँ।

इतनी देर बाद वसन्ती ने बिस्तरे की ओर इशारा कर कहा—'वह क्या होगा?'

कंघी और तेल की शीशी लाने के लिये कमरे में जाते हुए निताई ने जहाँ का तहाँ रुक कर कहा—'साफ करना है।'

भारी और तेज कंठ से वसन्ती चिल्ला उठी—'नहीं।' इतना कह कर वह सिसक-सिसक कर रोने लगी। अब वह चुप नहीं होना चाहती।

निताई भी अजीब आदमी है। वह हँस कर सांत्वना देकर बोला, —'मौसी ने जो कुछ कहा है, उसे मान लो वसन! तुम अभी किसी भी बात की चिंता न करो।'

लेकिन वसन्ती रोती ही रही।

निताई ने पुनः कहा—'मैं भी तो आखिर आदमी ही हूँ, जब मैं बीमार पड़ूँगा तब तुम सब कुछ वापस कर देना। मैं महाजन की तरह

पाई-पाई का हिसाब कर लूँगा। क्यों मौसी ठीक है न ?'

और वह हँसते हुए बिस्तरा साफ करने के लिये चल पड़ा।

ललिता, निर्मला, गालों पर तर्जनी ले जाकर विस्मय-विमुग्ध हो गयी और बूढ़ी ने एक लम्बी साँस खींच कर कहा—'वसन्ती, हम लोगों की वसन्ती बहुत भाग्यवान है।'

कै के सने हुए बिस्तरे और साड़ियां, सभी को उसने गर्म पानी में डाल डाल कर साफ किया। ललिता, निर्मला—तन का सौदा करने वाली—उनके जीवन में प्रेम शरद् के मेघ की तरह आता है और चला जाता है। यदि कुछ स्थायी होता भी है, तो हेमंत की शीतल हवा की तरह; दुर्दिन आने का आभास पाकर वह भी चली जाती है। बीमारी प्रकट होने के साथ-साथ लोग भाग खड़े हुए हैं। निर्मला का एक प्रेमी उसके बीमार पड़ते ही उसके रुपये चुरा कर भाग गया है। केवल अपने जीवन में ही नहीं, अपनी तरह की बहुतों के जीवन में उसने ऐसी घटनाएँ नहीं देखी।

कपड़े साफ कर जब लौटा, तब निताई ने देखा, वसन्ती चुप चाप उसी प्रकार बैठी है। वह उसकी ओर एक निगाह देख कर कुछ आश्वस्त हुआ। तेल और हल्दी लगा कर नहाने के बाद वसंती का शरीर थोड़ा चमकने लगा है। उसके सर के केशों को संवार कर बूढ़ी ने बांध दिया है और उसकी ललाट पर सिंदूर का गोल टीका भी लगा दिया है।

रोग से जर्जर, सौंदर्य हीन सुन्दरी वसंती अच्छी हो गयी है, और अपेक्षाकृत स्वस्थ देख कर सचमुच निताई को खुशी हुई है। उसने कहा—'वाह, देखो तो चंगी हो गयी हो अब तुम!'

वसंती उत्तर में हँसी, इसके बाद उसने एक गहरी साँस ली। जैसे निताई की बातें उसकी उस क्षीण हँसी की धार पर पड़ कर टुकड़े-टुकड़े हो गयी। उसकी खुशी वसंती की गहरी उसांस की फुंकार में कही उड़ गयी। वसंती की हंसी में जितना विद्रूप था उतना ही दुःख भी। इससे निताई विचलित हुए बिना नहीं रह सका।

आत्म संवरण कर निताई ने कहा—'बसंती मैंने झूठ नहीं कहा। तुम्हारा रंग लौट आया है—कमजोर हो सकती हो लेकिन चेहरे पर कमजोरी का चिन्ह नहीं रहा। विश्वास नहीं होता, तो आइने में तुम खुद देख लो।'

एक ही क्षण में एक कांड घटित हो गया।

वसंती की बड़ी-बड़ी आंखों के सफेद कोण से अग्नि स्फुलिंग झर कर सूखे हुए काले बारूद की तरह उसके तन में जैसे आग लगा दी हो। एक ही पल में विद्युत की नाईं क्षिप्र गति से निताई के हाथ से आइना झपट कर वसन्ती ने उसे फेंक मारा। कमजोर हाथ से फेंका गया आयना और निताई का गर्दन मोड़ लेना दोनों की गति में कोई अंतर नहीं था, इसीलिये निताई चोट खाने से बच गया। आइना जा टकराया एक खूँट से और वह जमीन पर गिर कर तीन-चार टुकड़े में बिखर गया।

निताई जरा हँसा वह बिखरे हुए शीशे के टुकड़ों को बटोरने लगा।

'वसन्ती!'

निताई ने गर्दन उठा कर देखा—मौसी खड़ी है। गम्भीर और कड़ी आवाज में मौसी ने पुनः कहा—'वसन्ती!'

वसन्ती पूर्ववत् नीरव और स्तब्ध! उसकी आँखों की पुतलियां भी स्थिर और निष्पलक रहीं।

'मैं पूछती हूँ, बीमार कौन नहीं पड़ता? तू अकेली बीमार नहीं पड़ी है? समझी—यह आदमी अगर नहीं होता तू 'छी छी' हो जाती!'

वसन्ती ने फिर भी कोई उत्तर नहीं दिया। और मौसी के इस रूप के सामने आँखें उठाकर बोलने की उसकी हिम्मत भी नहीं हो सकती। अभी की मौसी अपने आप से भिन्न है। कठोर, निष्ठुर शासन करने वाली दल की मालकिन है वह। औरतों से लेकर पुरुष तक, और तो और वह जिसे प्यार करती थी वह भी—वह भैंस की शकल वाला पहलवान तक बूढ़ी की इस मूर्ति के सामने खड़े होने में डरता

है। निताई भी उसके इस स्वर और स्वरूप से सन्न रह गया। वह जो कुछ कर रहा था उसके हाथ जैसे के तैसे रुक गये। और वह मौसी की ओर देखने लगा।

मौसी ने पुनः कड़ी आवाज में पुकारा, 'वसंती। तू कोई उत्तर नहीं देती क्यों?'

अब वसन्ती उठ खड़ी हुई। रंगी हुई पलकों को स्थिर किये ही मौसी की ओर उसने देखा। उसके साथ ही साथ निताई भी आ खड़ा हुआ—दोनों के बीच।

मौसी की दोनों आंखों से जैसे चिनगारियाँ बरस रही थीं। रात के अन्धेरे में जिस प्रकार बाघिन की आँखों से बरसती हैं: उसे होश नहीं है, लेकिन भय भी नहीं है केवल दहकने की शक्ति लेकर वह धधक रही है। निताई ने विनय के साथ हँस कर दृढ़ता पूर्वक कहा —'मौसी, तुम यहाँ से जाओ! यह बीमार ठहरी।'

'बीमार ठहरी! क्या दुनिया में बीमार और कोई नहीं पड़ता? उसे अकेले थोड़ी है। झाड़ू मारो!'

'ओह, मौसी, मौसी! राम राम।'

'राम राम क्यों? काहे जरा सुनूँ तो?'

'वह बीमार है, इसके अलावा उसने दोष भी तो कुछ नहीं किया।'

'मुझ से नहीं मेरे आदमियों के लिये तो उसने दोष किया हीं? तुम मेरे हो?'

'सो ठीक है, मगर मैं वसन्ती के लिये ही तुम्हारे दल में हूँ।

'जाओ तुम, बाहर जाओ।'

बूढ़ी ने निताई की ओर देखा। इस दल के प्रत्येक लोग बूढ़ी का अनुसरण करने के लिये बाध्य हैं। दल की मालकिन इस बात को जानती है। दल की हरेक प्रकार की व्यवस्था का अधिकार उसे है। प्रत्येक वस्तु का वितरण उसके हाथ से हो—ऐसी विधि है—उसका आसन, उसके रूप-प्रसाधन की वस्तुएँ, प्रत्येक इंसान को उसके अनुसरण

के लिये बाध्य कर देता है। अपनी जवानी में वह भी दल की किसी मालकिन के वश में थी। उसके दल में भी आज तक सभी लोग उसकी बातें मानते आये हैं, आज उसमें व्यतिक्रम देख कर वह स्तम्भित हो गयी। यह देख कर क्रोधित होना उसका स्वाभाविक है। गुस्से में तमतमा कर उसे चाहिये था कि वह पहलवान को पुकारे। मगर वह ऐसा नहीं कर सकी। वह यह तो समझ गयी कि यह आदमी कभी भी उसके मुँह चढ़ कर नहीं बोला, आज उसने उसे उलँघन किया, मगर बुरे भाव से नहीं, निताई ने उसका किसी विचार से अपमान नहीं किया।

उसकी ओर कुछ क्षण देखती रह कर उसने एक गहरी साँस छोड़कर कहा—'मैं तुम्हें आशीष देती हूँ बेटा, तुम्हारी उमर बढ़े। मौसी का सम्बन्ध तोड़कर आज माँ और बेटे का सम्बन्ध जोड़ूँ ऐसी इच्छा हो रही है। इससे मरने पर एक घूँट गँगाजल के लिये चिंता नहीं रहेगी।'

निताई ने सरलता के साथ हँस कर कहा—'माँ और मौसी में फर्क कहां है ? अभी अपने डेरे में जाइये, बहू और बेटे के झगड़े के बीच माँ-मौसी को नहीं पड़ना चाहिये।'

इसके बाद और कुछ न कह कर बूढ़ी ने उसका अनुरोध मान लिया, वह चली गयी।

अब निताई वसन्ती की ओर मुखातिब होकर बोला—'ओफ् ! बीमारी की हालत में कोई इतना क्रोधित होता है ? क्रोध से और भी तबियत खराब हो जाती है वसन्ती !'

अचानक वसन्ती कच्ची मिट्टी की जमीन पर पेट के बल लेट कर फफक कर रोने लगी।

प्यार से निताई ने कहा—'आज सबेरे से इस प्रकार रो क्यों रही हो वसंती ?'

वसन्ती और भी जोर से रोने लगी। उसका गला अवरुद्ध होगया।

निताई उसके सर पर प्यार से हाथ फेर कर बोला—'कल कलकत्ते के एक डाक्टर को दवा के लिये चिट्ठी लिखी है। तीन शीशी सालसा भेजने के लिये लिखा है। सालसा पीने से तबियत बिल्कुल ठीक हो जायेगी। खून साफ हो जायेगा—तब सब ठीक हो जायेगा।'

श्वास की रोगिणी वसन्ती रोने के कारण खाँसने लगी। खाँसते हुए उसने थोड़ा कफ निकाला और उसे फेंक कर मरे मुर्दे की तरह पड़ी रही। धीरे-धीरे एक अँगुली के इशारे से उसने जाने क्या दिखाया।

'क्या है ?'

इतनी देर बाद वसन्ती बोली—विचित्र हँसी हँस कर—'खून !'

'खून ?'

'वही काल रोग !' वसन्ती पुनः हँसी। इतनी देर तक जैसे यही एक शब्द न कहने के कारण वह रो रही थी। और उस एक शब्द के कहने के बाद उसकी रुलाई भी खत्म हो गयी।

निताई एकटक उसकी ओर देखता हुआ खड़ा रहा, बहुत देर तक चुपचाप।

वसन्ती ने कहा—'क्यों तुम इस दल में आये ? यही मैं सोच रही हूँ। मुझे मौत का डर नहीं, लेकिन अब तो मरने की इच्छा नहीं होती।' और उसने निताई के मुखमंडल पर दृष्टि गाड़ कर देखा जैसे उसमें कुछ ढूँढ रही है।

उसके कपोलों को थपथपाते हुये निताई ने कहा—'ऐसा मत सोचो। बीमार पड़ने से ही कहीं आदमी मरते हैं वसन्ती ! तबियत ठीक होते ही, सब कुछ ठीक हो जायेगा।'

पुनः पूर्ववत विचित्र हँसी हँस कर उसने गर्दन हिला कर यह सूचित कर दिया—'नहीं, नहीं, नहीं !' कुछ क्षण बाद उसने कहा—'नहीं, अब मैं नहीं बचूँगी।'

निताई की आँखें यह सुन कर डबडबा आयीं।

वसन्ती बोली—'मैं जान गयी हूँ। बेहला वाला जब रात को बेहला

बजाता है तब पहले कान खड़े किये रहती थी; किंतु अब अच्छा नहीं लगता। डर लगता है। और मुझे ऐसा लगता है कि मेरे इर्द-गिर्द खड़ा होकर कोई रोता है—स्वर बांध कर। हमेशा मेरे मन में मौत का भय समाया रहता है। मन की बात कभी झूठ नहीं होती।'

वसन्ती के मन की बात सचमुच, सच है, झूठ नहीं। कई दिनों के बाद ढलती शाम को उसके शरीर पर बुखार का उत्ताप मिला। ऐसी हालत में भी एक जगह से दूसरी जगह सफर करने की सीमा नहीं थी। उस दिन वे लोग एक छोटे से शहर में आ पहुँचे थे और अपना डेरा डाल चुके थे। यहाँ झोपड़ियाँ नहीं थीं। उन लोगों ने एक कच्चा मकान भाड़े पर ले लिया था। निताई बोला—ललिता को मैं बुला लाऊँ। वह तुम्हारे पास बैठे। मैं किसी डाक्टर को बुलाने जाऊँगा।'

'नहीं,' वसन्ती आकुल हो उठी—'नहीं!'

'अभी, यही आधे घण्टे में ही मैं लौट आऊँगा!'

'नहीं, नहीं! अगर खांसी आयी? खून अगर गिरा और उसने देख लिया तो, इसी सड़क पर मुझे छोड़ कर सभी भाग जायेंगे। तुम, तुम न जाओ।'

निताई विवश होकर बैठ गया। वसन्ती को खून गिरता है, यह बात आज भी सभी से छिपी है।

बुखार आज बढ़ता जा रहा है—बहुत! और दिन तो रात को थोड़ा पसीना निकल कर बुखार उतर जाता था और वसंती कुछ ठीक मालूम पड़ती थी। परन्तु आज पसीना भी नहीं आता और वह ठीक भी नहीं मालूम पड़ती। रह-रह कर वह बुखार में व्याकुल, आँखों की भारी पलकों को बड़ी मुश्किल से उभार कर निताई को ढूँढ कर देख लेती है और फिर आँखें बंद कर करवट बदल कर सो जाती है। आज वह अधिक व्यग्र है।

निताई ने यह सब कुछ देख कर समझ लिया था। इसी से जितनी

बार वह आँखें खोलती, उतनी बार वह उसे सहारा देता, कहता—'मैं हूँ, बैठा हूँ न ? वसंती !'

रात का वह अंतिम पहर था। निताई की आँखें नींद से भरी थीं और वह दीवाल से उठंगा रह कर सो गया था।

यह रात का अंतिम पहर—एक विचित्र समय है। इस समय दिन भर की संचित उत्ताप क्षय होकर जाग उठती है—एक रहस्यमय घनी शीतलता में उसी का स्पर्श ललाट पर होता और चेतना जैसे अभिभूत हो जाती। धीरे-धीरे संचारित रात्रि के अंतिम क्षण में से होता हुआ हिम-रहस्य सृष्टि को छा लेता है। धरती की घाटी में वृक्षों के पत्तों में वास करते हुए जो असंख्य कोटि कीट पतंग अविराम स्वर लहरी उत्पन्न करते रहते हैं, वे भी अभिभूत हो जाते हैं। इस समय कुछ क्षणों के लिये वे भी निस्तब्ध हो जाते हैं। आकाश पर भी ज्योति होती है पीली जैसे उस लोक पर भी हिम का असर पड़ता है। केवल अग्निकोण में चमकता रहता है शुक्रतारा-अन्धी रात—देवता के ललाट पर की आँख की तरह। सभी इन्द्रियों को आच्छन्न करने वाली इस गम्भीर शीतलता के स्पर्श से निताई बहुत कोशिश के बाद भी जाग नहीं सका। दीवाल का सहारा लेकर जाने कब ढुलक गया है।

अचानक वह जगा—वसन्ती के आकर्षण से। वसन्ती जाने कब उठ बैठी है। दोनों हाथों से उसका कंधा पकड़ कर वह उसे जगा रही है—'ऐ, अजी, सुनते हो···।' अति विह्वल उसकी ध्वनि थी।

'क्या, क्या वसन्ती ? उठ बैठी क्यों ? लेट जाओ, लेटो !'

वसन्ती के दोनों हाथ बर्फ की तरह ठंडे हैं। पृथ्वी के हृदय को व्याप्त कर जो हिम बह रहा है, वही हिम जैसे वसन्ती के सारे शरीर में संचारित है। वसन्ती के सारे शरीर में पसीना चुह-चुहा आया है।

'रोको, रोको !'

'किसे ?'

'बेहला ! बेहला मत बजने दो।'

'बेहला ? कहां ?' निताई ध्यान मग्न हो ढूँढ़ने लगा बेहले का स्वर। लेकिन निस्तब्ध रात के अन्तिम पहर में उन दोनों के श्वास-प्रश्वास के सिवा और किसी भी प्रकार की ध्वनि वह नहीं सुन सका।

'ओह ! सुनते नहीं हो ? अरे वह क्या बज रहा है ? केवल बेहला बजाता है, बजाता रहता है क्यों वह ?'

पलमात्र में निताई के मन में एक बात जाग उठी। वसन के शरीर के स्पर्श ने ही उसे सचेत कर दिया। उसके मुँह की ओर देख कर करुणा से अविभूत हो निताई ने कहा—'वसन्ती वसन्ती !' और उसका गला अवरुद्ध हो गया। बड़ी मुश्किल से उसने पुनः कहा—'राम का नाम लो वसन्ती !'

'क्यों ?' वसंती ने अस्थिरता में प्रश्न किया—'क्यों ?'

क्यों ? इसका उत्तर निताई नहीं दे सका।

मौत की गोद में अस्थिर पड़ी रह कर भी वह कई मुहूर्त के लिये धीर-गम्भीर और शान्त हो उठी और निताई के मुँह को स्निग्ध दृष्टि से निहारते हुए पूछा—'क्या मैं मर रही हूँ ?'

निताई क्षीण हँसी हँस कर उसके सर पर हाथ फेरते हुए बोला—'भगवान का नाम लेने से कष्ट कम होगा, वसंती !'

'नहीं', धनुष की प्रत्यंचा से छूटे हुए तीर की तरह करवट बदल कर वसंती ने कहा—'नहीं, भगवान ने हमें क्या दिया है ? पति-पुत्र, सुहाग-भाग क्या दिया है उसने ? नहीं।'

निताई अपराधी की तरह चुप रहा। भगवान के विरुद्ध जो कुछ भी वसंती ने कहा—वह उचित है, जाने क्यों, वसंती के ऊपर ही वे रुष्ट रहे।'

वसंती पुनः करवट बदल कर बोली—'भगवान, प्रभु दया करो,

अगले जन्म के लिये दया करो।'

उसकी बड़ी-बड़ी दोनों आँखें पानी से भर कर जैसे तैर रही थीं, वर्षा की धार में डूब गये पद्म की पंखुड़ी की तरह।

निताई बड़े यत्न पूर्वक अपनी धोती की खूँट से उसकी आंखों का पानी पोंछ कर बोला—'बसंती !'

'नहीं, अब मत पुकारो, नहीं', इतना कहते हुए शून्य वायुमण्डल में सारी शक्ति लगाकर कुछ पकड़ने के लिये अपने दोनों हाथों को उसने बढ़ाया और कठोर यंत्रणा से व्यग्र हो उठी।

दूसरे ही पल वह निताई की गोद में ढुलक पड़ी

२०

गंगा के किनारे बसा शहर। गंगा के किनारे एक श्मशान में ही निताई ने बसंती का अंतिम संस्कार किया। उसका हाथ दल की अन्य स्त्रियों ने बँटाया। लेकिन यह आश्चर्य की बात है दल के किसी पुरुष ने उसका शरीर तक नहीं छुआ। इस समय सभी अपने-अपने जाति गत संस्कार की रक्षा के लिए चैतन्य होगये थे। शागिर्द, ललिता को प्यार करने वाला आदमी—उसने मुँह खोल कर कहा—'उस्ताद, जो कुछ करना है, उन्हें ही करने दो। तुमने तो बहुत किया, अब क्यों अपना धर्म बिगाड़ते हो !'

निताई हँसा, विरोध उसने नहीं किया। उसने उसकी बात सुनी है, यह भाव भी व्यक्त होने नहीं दिया। मगर तार्किक शागिर्द ने उसे नहीं छोड़ा, बोला—'यह हँसने की बात नहीं है। परलोक में—'

बेहले वाले ने उसे बीच में ही रोक कर कहा—'छोड़ो भाई, उस
ात को छोड़ो !' और उसने बेहला के तारों पर छड़ी रख कर एक
ोर को खींच लिया।

चिता के ऊपर शव को चढ़ाने के पहले बूढ़ी ने एक लम्बी साँस
िंचकर कर कहा—'ओह, वसन्ती, मेरी सोने की चिड़िया !' और
ा बूँद पानी भी उसकी आँखों से गिर गया।

पास में ही बैठी थी ललिता और निर्मला। मन की अव्यक्त रूलाहट
उनकी आँखों से केवल पानी बह रहा था।

निताई ने अकेले चिता पर शव रखने की चेष्टा की, बूढ़ी ने कहा
—'ठहरो,' वह शव के पास आकर वसन्ती का जेवर खोलने बैठी। नीचे
ाके की शरीर बेचने वाली के तन पर जेवर भी कितना और क्या
ह सकता है। कानों में कर्णफूल, नाक में लौंग, हाथों में चूड़ियाँ और
सके अलावे वसन्ती के गले में था एक हार।

निताई हँसा। बोला—'खोल रही हो मौसी ?'

मौसी ने केवल उसकी ओर एक बार देखा, इसके बाद उसने अपने
ाम में मन लगा दिया। जेवरों को जब वह अपने आंचल में बाँध चुकी
ब बोली—'हृदय की निधि चली जाती है भइये, तो मालूम पड़ता है
क दुनियाँ अंधकार है। लेकिन एक वक्त बीतते न बीतते आँखें खोलनी
ी पड़ती हैं, पैरों पर खड़ा होना ही पड़ता है। इस पेट पापी को भरना
ी पड़ेगा, लोगों से आँखें चार करनी ही पड़ती हैं। बचना ही होगा,
ब खाना और पहनना पड़ेगा ही—इन जेवरों को चिता में छोड़ देने
ही क्या फायदा, तुम्हीं कहो ?' इतना कह कर वह क्षण भर के लिये
प हुई और पुनः हँस कर बोली—'यह सब मेरा ही दिया हुआ है।
इये !'

इस बात पर भी निताई केवल मुस्कुराया और वह निराभरण
सन्ती को निहारने लगा। इसके बाद एक लम्बी सांस खींच कर उसे
ता पर लिटा दिया।

बूढ़ी ने पुन: कहा—अपने सर को पीटते हुए—'मेरे भाग्य को देखो भइया ! मैं ही हुई वारिस ।' और उसकी आँखों से पानी गिर पड़ा ।

ललिता और निर्मला उदासी से भरी सजल आँखों से वसन्ती की चिता की ओर देख रही थीं । इसमें सदेह नहीं कि वसन्ती के वियोग से उनका हृदय कराह रहा था लेकिन इसी क्षण वह सोच रहीं थीं—अपनी अपनी बातें । हो सकता है उन लोगों को भी इसी प्रकार जाना पड़ेगा, मौसी इसी तरह उन लोगों के शरीर से भी सोने के कई टुकड़ों को खोल लेगी । भाग्य से यदि बूढ़ी होकर वे जीवित रहीं तो इस मौसी की तरह वे भी दल की मालकिन कहलायेंगीं, मगर साथ ही साथ एक मिनट के आगे पीछे दोनों ने ही लम्बी उसाँसें लीं । कल्पना उन लोगों की इतनी दूर नहीं गयी—आशा से बढ़ कर उनके लिये निराशा ही है । सिर्फ यही नहीं निराशा के परिणाम की कल्पना करने में उन्हें अच्छा लग रहा था । वे भी इसी तरह मरेंगी, मौसी जीवित रहेगी ।

दाह संस्कार शेष कर, लौट कर निताई ने देखा—वह पहलवान वसन्ती के घर में जम कर बैठा है । इसी बीच वसन्ती की सभी चीजें एक जगह बटोर ली गयी हैं ।

फिर भी निताई ने केवल हँस कर कमरे में एक ओर एक चटाई बिछा कर चिन्ता की ज्वाला में झुलसते हुए शरीर को ढीला कर दिया ।

सोच रहा था मौत की बात ।

मौत क्या है ? पुराण में मौत के विषय में बढ़ी हुई बातें उसे याद हो आयीं । मनुष्य की उम्र खत्म हो जाने पर धर्मराज यम आदेश देते हैं अपने अनुचर को—उस मनुष्य की आत्मा को लाने का । धर्मराज के अदृश्य अनुचर आते हैं और मनुष्य के अदृश्य प्राण को ले जाते हैं । धर्म राज अपने न्यायालय में उसके कर्म पर विचार करते हैं और कर्म के अनुसार स्वर्ग या नर्क में उसे रखने का निर्णय देते हैं । तरह-तरह के कर्मों के लिये तरह-तरह का पुरस्कार मिलता है और दंड भोगन

पड़ता है। निताई को भी एक दिन वहाँ जाना पड़ेगा ही। वसन्ती के कर्म से उसके कर्म में फर्क कहां है? अतएव वसन्ती जहाँ गयी है, वहाँ ही वह भी जायेगा। हो सकता है, घोर नर्क में। उस दिन उससे मुलाकात होगी। लेकिन आज उसका मन उससे नहीं भरा है। उसकी गोद में ही तो वसन्ती अपने को सौंप गयी, अपने हाथों ही उसे, उस छाती को उसने जला कर राख कर दिया। समस्त पृथ्वी में अब वसन्ती को खोज कर पा नहीं सकता।

यही एक बात उसके मन में बार-बार गूँज रही है—अब वह वसन्ती को नहीं पा सकता—वसन्ती चली गयी। वही वसन्ती! जिसके होठों पर नंगी तलवार की धार की तरह हँसी थी, जिसके शरीर में आग की लपट की तरह ताप था, उसी तरह जिसका रंग था। वसन्ती के हरे-भरे लता पत्तों की तरह जिसकी वेष-भूषा थी। वही वसन्ती चली गयी! शरीर पर के जेवर बूढ़ी ने उतार लिये, उसने स्वयं उसके शरीर को चिता पर सजा दिया और वसन्ती ने जरा-सा भी विरोध नहीं किया। मौत सचमुच में सृष्टि की सब से बड़ी विचित्रता है। उन जेवरों के लिये वसन्ती को कितनी चिन्ता थी। उन जेवरों को बूढ़ी ने ले लिया और वसन्ती ने कुछ नहीं कहा? उस शरीर का वह कितना यत्न करती थी। जरा-भी कष्ट वह बर्दाश्त नहीं कर पाती थी, वही शरीर जल कर राख हो गया, मगर उसका चेहरा जरा-भी विकृत नहीं हुआ। दुःख, कष्ट, लोभ, मोह—सभी को एक ही पल में मौत ने भुला दिया। मौत तुम अद्‌भुत हो।

इसी प्रकार सोचते सोचते उसके कण्ठ से फूटा :—

'मृत्यु हे, तुम्हें कोटि कोटि प्रणाम!
तुम जिस पर कृपा करते—उसका सारा दुःख हो हरते
क्रोध, मोह अहंकार सभी को कर देते मटिया मेट
दुनिया कहती एक स्वर में यह है महा प्रयाण
मृत्यु हे, तुम्हें कोटि-कोटि प्रणाम!

फिर भी एक दुःख उसके मन में काँटे की तरह बिंध रहा था। वसन्ती आज ही मरी है, दोपहर तक उसका शरीर भी यहीं था। अभी प्रायः सन्ध्या हुई है, इतने समय के बीच ही वसन्ती मिट गयी। बूढ़ी वसन्ती के घर का सामान लेकर अपने कमरे में रख कर खाने-पीने में व्यस्त है। ललिता और निर्मला आज अपने पैसे से ही शराब मंगा कर पीने बैठ गयी हैं! बेहला वाला, शार्गिद और ढोलकिया आपस में बातें कर रहे हैं कि किस दल में अच्छी गाने और नाचने वाली रूप और यौवन से गदराई छोकरी है। बहुत वाद-विवद के बाद 'प्रभाती' नव युवती का नायक एक को मान लिया गया। उसे ही अपने दल में ले आना चाहिये। बीस-तीस यहाँ तक कि पचास रुपये देकर भी उसे अपने दल में लाना आवश्यक ही नहीं अति आवश्यक है। नहीं तो इस दल का नाम निशान मिट जायेगा।

ढोलकिये ने कहा—ललिता, निर्मला पर मजलिस के लिए निर्भर किया जाये तो आंखें बन्द कर केवल गीत सुना जा सकता है।

ललिता और निर्मला फुंकार उठी—शराब के नशे में उत्तेजित शरीर बेचने वाली, अपने रूप की निन्दा से वहाँ के वातावरण को गाली-गलौज से गन्दा कर दिया है।

वसन्ती इनके बीच से मिट गयी?

निताई धीरे-धीरे कमरे से बाहर निकल गया। गाँव में मोहल्ले में आदमी मरता है यह उसने सुना है। मौत के सम्बन्ध में सभी आदमी की तरह एक डर, एक करुणा पूर्ति, असहाय दुःख ही उसे था। लेकिन वसन्ती उस गोद में मर कर मौत से उसका प्रत्यक्ष परिचय करा गयी। मौत जैसे वसन्ती के लिये उससे छीना-झपटी कर गयी है।

लेकिन वसन्ती की मौत से भय नहीं था, फिर भी जीवित रहने की उसकी साध थी। मौत से डर आखिर क्यों? डर है केवल खो जाने का। शरीर घर-संसार, स्वजन को पृथ्वी में खोकर असहाय मनुष्य की आत्मा बहुत बार रोती फिरती है। निस्तब्ध नीरव और अंधियारी

रात में सम्भव है वसन्ती आये, चिता के पास अपने खोये भंवर को ढ़ूँढ़ने ?

वसन्ती; किन्तु नहीं आयी ।

सारी रात श्मशान में सियार, गिद्ध, और कुत्तों के बीच उसने काट दी, मगर वसन्ती से उसकी मुलाकात नहीं हुई । सारी रात किनारे से गंगा की लहरें टकराती रहीं । आकाश पर से दो-तीन तारे टूट गये । गंगा के उस पार की सड़क पर से कितनी ही बैल गाड़ियां गुजर गयीं । उन गाड़ियों के नीचे लटकने वाली एक एक बत्तियाँ चार-चार बत्तियों के रूप में प्रतीत हुईं । सारी रात जुगनू जागती रही—मृग मरिचिका की तरह । स्यार गंगा के किनारे के टीले पर दौड़ते रहे, वृक्ष पर गिद्ध रोया, चिता के पास कितने ही बैठे रहे उदास होकर । निताई ने सब कुछ देखा । किसी में भी उसे वसन्ती का आभास नहीं मिला, किसी भी क्षण उसे किसी में उसका भ्रम तक नहीं हुआ ।

आकाश के तारे पूरब से पश्चिम की ओर ढुलक पड़े, बड़ी किश्ती भंवर में चक्कर काट कर घूम गयी । पूरब के आकाश के कोने में शुक्र तारा निकला । गंगा के किनारे किनारे प्रायः एक कोस तक छोटे-छोटे गाँव बसे हैं, उन गाँव के वृक्षों के सर धीरे-धीरे फीके रंग से रंग गये । पंक्षी अब कलरव कर उठे । रात शेष हो रही है ।

हाँ, वसन्ती मिट गयी है, बिल्कुल मिट गयी । अचानक उसकी आँखें फट कर उनमें पानी आया । आँखों को बन्द करने की उसकी चेष्टा करते ही वसन्ती का मुख मंडल उसे अपने हृदय में दीख पड़ा । उसे लगा जैसे वसन्ती उसके सामने खड़ी है—वसन्ती ! वसन्ती !

आँखें खोलते ही निताई का भ्रम दूर हो गया । आकाश पर का अंधेरा और भी मिट गया है । गंगा, श्मशान, वृक्ष, चिताओं के अंगारे, कुत्तों का झुण्ड, निताई के सामने है और उसने फिर आंखें बन्द की, यह क्या ! फिर वह वसन्ती को देख रहा है । वसन्ती आयी है । आंखों के बन्द करते ही वह देख पाता है वसन्ती को साफ-साफ—सचमुच की वसन्ती वह हँस रही है, बोल रही है । पुरानी बातें नहीं, वसन्ती नयी

भंगिमा में जाने कितनी नयी बातें कर रही है, वह नयी वेश-भूषा और नये रूप में दिखाई पड़ रही है।

निताई आनन्द विभोर हो उठा और वह इस खुशी में नया गीत गाने लगा :—

मरन हे तुम हारे
हृदय की निधि तुम छीन सके,
मन की निधि मगर है, अमर हमारे
हृदय के भीतर, मेरे मन का लोहे का है घर
उसी में रखता हूँ उसे, वह है न्यारे।
है क्या शक्ति तुम्हारी छीनने की इतनी ?
छीन सको तो छीनो मुझको
मैं वह हूँ, वह मुझ में,
मैं जीता, तुम हारे।
मरन हे तुम हारे !

मन भर कर वह वहाँ से उठा। उसकी बसन्ती खोयी नहीं है। गंगा के जल में हाथ मुँह धोकर वह लौटा घर की ओर।

वहां तब तक हाय-हाय मच गयी थी। उसे देख कर सभी बोल उठे—'यह हैं ! कहाँ थे ?'

शागिद ने उसका मजाक उड़ाते हुए कहा—'मैं कहूँ, शायद उस्ताद पागल हो गया है, पागल नहीं तो योगी वैरागी !'

निताई मधुर मुस्कुराहट के साथ-साथ अपने एक पुराने गीत की दो पंक्ति गुनगुना उठा :—

उसके बिना रहूँ मैं कैसे ?
जाऊँ मैं उसी राह में जिससे गये हमारे जैसे !

ललिता ऐंठ कर बोली—'क्या कहते हो जीजा जी, तुम्हारे शरीर पर राख नही है क्यों ?'

निर्मला लेकिन उससे प्यार से बोली—'बैठो भइया, मैं चाय बना

देती हूं ।'

बाजेवाले ने धीरे से कहा—'कल कहां थे ? किसके घर में ? वह कैसी है ?'

उसकी धारणा थी कि निताई कल रात को वसन्ती को भूलने के ख्याल से किसी तन बेचने वाली के घर में था ।

बेहले वाले ने कहा—'चुप रहो । जैसे तुम हो उसी तरह सबको समझते हो । बैठो उस्ताद । बैठो ।'

निताई हँसकर बैठ गया ।

बूढ़ी अब तक अपने काम में फँसी थी । किसी पुराने कपड़े के व्यापारी के हाथ वसन्ती के पुराने कपड़े बेचने के चक्कर में लगी थी । उस से निपट कर वह बाहर आयी । निताई से बोली—'सुनो, इसी वक्त यहाँ से डेरा कूँच करना है । अपना सामान ठीक कर लो ।'

निर्मला ने एक कटोरे में थोड़ी चना चबेना लाकर उसके सामने रख दिया, बोली—'चाय बन रही है । कल सारी रात तुमने कुछ नहीं खाया होगा ।'

उसकी ओर देखकर निताई बोला—'बहन के सिवाय भाई का दर्द कोई नहीं समझता ।'

'और मौसी को बिलकुल भूल ही गये तुम ?' बूढ़ी ने उसके सामने एक शराब की बोतल और थोड़ा भुना हुआ मांस लाकर रख दिया—'कल रात से ही ये पड़ा है । खाओ, शरीर में ताकत आयेगी ।'

निताई उसकी ओर देखकर हँसा और बोला—'भला माँ-मौसी को कोई भूलता है; कभी नहीं भूल सकता । तुम्हारी याद हमेशा बनी रहेगी मौसी !'

मौसी उसे खाने-पीने का आदेश देकर चली गयी ।

ढोलकिया उसके निकट आया—'हंसता हुआ । निताई उसका मतलब समझ गया, बोला—'लो, ढालो शुरू करो ।'

कृतार्थ होकर शराब ग्लास में उंड़ेलते हुए ढोलकिये ने फुसफुसाहट

भरे स्वर में कहा—'वसन्ती के कपड़े लत्ते बिक गये।'

निताई ने कोई उत्तर नहीं दिया।

ढोलकिये ने पुनः शिकायत की—'तुम्हें वसन्ती के शरीर से जेवरों को उतार लेना चाहिए। कैसे आदमी हो तुम ? कोई ऐसी मूर्खता करता है भला ?'

निताई ने बेहलावाले और शागिर्द से कहा—'लो तुम लोग भी पिओ।'

वे लोग भी सहानुभूति दिखाते हुए उससे आ चिपके। कुछ क्षण बाद ही बेहलेवाले ने चौंककर कहा—'अरे बोतल खाली होगयी ! और तुम, तुमने तो एक घूंट भी नहीं पी ?'

निताई ने हंसकर उत्तर दिया—'मैं नहीं पिऊंगा। अब शराब नहीं पिऊँगा।'

'नहीं पिओगे ?'

'नहीं।'

सभी चकित हो गये।

निताई ने कहा, बेहलेवाले से—'तुम से एक चीज सीखने की बड़ी साध थी। रात को जो तुम बेहला बजाते हो, वही गत मैं सीखना चाहता था।'

बेहले वाले ने कहा—'सीख लो, तुम्हें नहीं सिखाऊँगा उस्ताद तो किसे सिखाऊँगा।' बस तीन दिनों में ही सिखा दूँगा।'

'तीन दिन !' निताई ने कहा—मगर अब मेरे पास अब इतना समय कहाँ है ?'

'क्यों ?' यह प्रश्न किया शागिर्द ने। बेहले वाला मुँह पर हाथ रखकर टकटकी बांध कर उसकी ओर देख रहा था।

निताई बोला—'आज ही मैं चला जाऊँगा।'

'सो तो हम लोग भी—मगर तुम—।' शागिर्द के मुँह पर हाथ रखकर बेहलेवाले ने कहा—'ठहरो तुम ठहरो।'

लेकिन निताई ने शागिर्द की बात का ही जवाब दिया—'तुम लोगों का रास्ता दूसरा है और मेरा दूसरा।'

बेहले वाले ने केवल उसका हाथ पकड़ लिया—'उस्ताद !'

निताई मौन रहा। इसके बाद गला खोलकर गाने लगा—

वसन्त चली गयी हाय !
भँवर अब कैसे गीत गाय
क्योंकर दिल यहाँ लगाय !'

बेहला बजाने वाले ने बेहला उठा लिया—'सुनो उस्ताद सुनो वही गत—आया है।'

उसने छड़ी टान ली—लम्बा विलवित लय।

बूढ़ी ने बहुत समझाया। बहुत लोभ भी दिया। वसन्ती के गहने और कपड़े लत्ते से प्राप्त रकम में हिस्सा देने को वह तैयार हुई। और बोली भी—'वसन्ती से भी अच्छी लड़की को मैं अपने दल में ला रही हूँ भइये! मैं वचन दे रही हूँ, तुम्हारे पास ही वह रहेगी।'

निताई बोला—'नहीं, मौसी, अब नहीं।'

निर्मला रोई।

निताई की आंखें भी गीली हो आयीं। आँखों को पोंछ कर उसने कहा—'तुम न रोओ, तुम्हारे रोने से मुझे कष्ट पहुँचेगा।'

बेहले वाले ने कहा—'तुम क्या वैरागी हो गये हो उस्ताद ?'

निताई उसके इस प्रश्न का जबाब नहीं दे सका। अब तक वह कुछ सोच भी नही सका था। लेकिन यहाँ अच्छा नहीं लगता। केवल अच्छा नहीं लगता, वसन्ती के साथ जो उसने गाँठ बांधी वह गाँठ अब खुल गयी हैं। वसन्ती ने उसे आज मुक्त कर दिया है, वह अब इस दल में रह कैसे सकता है ? बेहलेवाले के प्रश्न ने उसके मन में एक नया स्वर जगा दिया—वैरागी ?

वैराग्य ही उसे भाया।

२१

झूमर का दल चला अपने देश की ओर।

बँगाल में, मेला एवं समारोह, पर्व उत्सव सब कुछ एक साथ ही खत्म होता है। वैशाख महीने से खेती का काम शुरू होता है, इसीलिये इस समय मेला और पर्व त्यौहार सभी कुछ इसके पहले ही खत्म हो जाता है। नहीं हो तो चले भी नहीं। और अश्विन के बाद मेले में उत्सव आरम्भ हो जाता है। बैशाख में एक त्यौहार पड़ता है—वह है बुद्ध पूर्णिमा, धर्मराज की पूजा। वह भी बीत गया है। अब शहरों में डेरा डालने से कुछ आमदनी हो सकती है। मगर बसन्ती की मौत जैसे उनके दल को भी मार गया। अब मजलिस जम नहीं सकती। इसीलिये सब लोग अपने देश की ओर चल पड़े हैं।

निताई किस ओर और कहाँ जायेगा—यह स्थिर नहीं किया है। लेकिन इस दल का बन्धन तोड़कर वह एक नयी दिशा की ओर चलेगा।

निर्मला का रोना रुक नहीं रहा था।

अन्त में ललिता भी रोयी।

बूढ़ी ने अभी तक आशा नहीं छोड़ी है, उसने कहा—'हमेशा ता मनुष्य का मन बैरागी नहीं रहता भइये, फिर तुम्हारे मन का रंग बदलेगा। उस समय लौट आना। मौसी को भूल मत जाना।

पहलवान ने भी उससे बातें की—'जाते हो ? जाओ मगर सन्यासी होने में बहुत कष्ट है। भीख से पेट नहीं भरता, लेकिन ठीक है, अच्छा जाओ।'

वे लोग जायेंगे छोटी लाइन से जिस लाइन से निताई का गांव

पड़ेगा । इसी लाइन की गाड़ी से निताई आया था—गाँव घर त्यागकर। गाड़ी पर जब मौसी चढ़ गयी तब बोली—'आओ, आओ गाड़ी पर ही चढ़ जाओ। इसी लाइन पर तो तुम्हारा घर है। घर लौट चलो भइये।'

घर। वही कदम्ब का गाँछ। ठाकुर जी। स्वर्ण विन्दु की तरह चमकने वाला चमचम करता हुआ कलश सर पर रखे, सफेद मोटी साड़ी पहने काली-सी लड़की। उसे याद आया कितना पुराना वह गीत।

काला अगर है खराब, तो केश पके पर क्यों रोते?
काली वेणी में लाल फूल है कितने सुन्दर होते।

निताई के चेहरे पर हँसी की रेखा दीख पड़ी। अद्भुत हँसी। कितनी बातें उसे याद पड़ रही है, कितने पुराने गीत।

निताई ने गर्दन हिलाकर उत्तर दिया—'नहीं।'

उसके हृदय में गूँज रहा था—'चाँद तुम रहो आकाश'—मन में बांध रहा था—इसी से चल पड़ा हूँ दूर, बहुत दूर उसने फिर गर्दन हिलाकर अस्वीकार किया नहीं।

निताई चुपचाप विदा हुआ। इस बिदाई ने उसके शोकाकुल मन को और भी उदास कर दिया! दल के प्रत्येक आदमी का चेहरा उस की आँखों के सामने क्रमश: चलचित्र की तरह एक-एक कर आया—विदा की व्यथा में कातर और क्लांत चेहरा। किसी से भी कभी उस की अनबन नहीं हुई। वे लोग इतने अच्छे थे—यह बात आज के पहले कभी भी उसके मन में नहीं आयी थी बल्कि जब उन लोगों के पास वह था तब उन लोगों की बुराई ही अधिक आंखों की पकड़ में आई है। मौसी को देखकर उसे ऐसा प्रतीत होता था कि मीठा बोलती है, लेकिन इसका अन्तर जहर से लबालब भरा है। झूठ के सिवाय सच कभी बोलना नहीं जानती। दुनिया में भोजन और रुपये के सिवा मौसी किसी को भी अच्छा नहीं जानती। लेकिन आज उसे लगा—नहीं,

नहीं मौसी-मौसी है। वह मां की तरह उसे प्यार करती थी उसकी आँखों का वह कई बूँद पानी वसन्ती के मरते समय भगवान के नाम की तरह ही सत्य है।

निर्मला तो हमेशा अच्छी थी। अपनी बहन की तरह ही अच्छी। और ललिता, ललिता साली की तरह ही शोख थी।

बेहला बजाने वाले की बातें याद कर उसकी आंखें डबडबा आयीं। उसके कानों में गूँजने लगा—वही चिर परिचित स्वर !

वह आ पहुँचा गंगा के किनारे। गंगा में स्नान कर उसने मन ही मन एक गंगा स्तवन की रचना भी की। घाट के ऊपर ही वह एक वृक्ष की छाया में आ बैठा। अब वह कहां जाय ? सड़कों पर भीख मांगे—गायक भिखारियों की तरह ? नहीं, तब ? वह क्या करे—जाय भी कहां वह ? यकायक उसके मन में आया कि वह भगवान के चरणों में चला जाये। अन्नपूर्णा माता, सीता माता, राधे कृष्णा, कृष्ण राधे के श्री चरणों में-वह कवि है। वह उन्हीं देवी देवताओं के दरबार में बैठ कर गीत गायेगा—उन्हीं की महिमा का वर्णन करेगा। भगवान को गीत सुनायेगा। भक्त जन सुनेंगे तो अवश्य कुछ न कुछ उस पर दया करेंगे—इसी से उसके दिन गुजर जायेंगे। चिन्ता कैसी ? ओह जला हुआ मन—इतनी देर तक तुम यही बात सोच नहीं सके ? सारा दिन वह कल्पना करता रहा—वह पैदल ही चलेगा और जब बहुत थक जायेगा तब गाड़ी पर चढ़ेगा और थकावट मिट जाने पर फिर वह पैदल ही चलेगा। यहाँ से काशी, बाबा विश्वनाथ। इसके बाद मथुरा —नहीं, नहीं मथुरा वह नहीं जायेगा। राधा रानी को रुलाकर राज्य के लोभी श्याम वहाँ राज्य करते हैं, वह वहां नहीं जायेगा। बल्कि कुरुक्षेत्र—हरिद्वार चला जायेगा। हरिद्वार के बाद ही है हिमालय—पर्वत और पर्वत ! संसार में इससे ऊँचा पहाड़ है ही नहीं—हिमालय का सर्वोच्च शृंग है गौरी शंकर। हिमालय में ही है मानसरोवर। वहाँ तक ही आदमी जा सकता है। निताई मान सरोवर में स्नान करेगा।

इसके बाद जन शून्य हिमालय पर ही कहीं भी अपनी धूनी रमा देगा। रोज, हर रोज नये-नये गीतों की रचना करेगा गायेगा, और पहाड़ों की शिलाओं पर खोद उसे अमर बनायेगा। तब जो कोई भी उस राह से गुजरेगा वह उसके गीलो को पढ़ेंगे—मन ही मन वे निताई के कवि को प्रणाम करेंगे।

वैशाख की दोपहरिया। अग्नि की तरह गर्म झंझावत गंगा की बालू 'हू हू' करती हुई उड़ रही है। दोनों किनारे बालुग्राही धूसर भूमि जैसे धू-धू कर रही है। मनुष्य नहीं है, सिर्फ दो एक कौए आकाश पर पर मार रहे हैं—वे भी जैसे कहीं दूर, दूर जा रहे हैं। सब कुछ शून्य, सब कुछ उदास, सब कुछ स्तब्ध। एक असीम वैराग्य ने पृथ्वी को छा लिया है। निताई उसी अग्नि वर्षा करती हुई दोपहर में चल पड़ा—

'चलो मुसाफिर बांधो गठरी
बहुत दूर है जाना।'

निताई काशी पहुँचा।

पुल पर से ही गाड़ी की खिड़की से गर्दन निकाल कर उसने देखा—विस्मय विमुग्ध हो उठा। दूज के चाँद की तरह गंगा की निर्मल धार पर किरणें तैर रही हैं—उसकी गोद में चारों ओर मन्दिर, मन्दिर और घाट और भी कितनी ही विशाल अट्टालिकाएँ। गाड़ी के यात्री पुकार रहे हैं—जय बाबा विश्वनाथ, अन्नपूर्णा माई की जय।

उसने भी उनके स्वर में स्वर मिलाया।

स्टेशन पर उतरते ही उसके मन का छन्द बन्द तोड़ कर मुक्त हो गया। वह झुंझला उठा, विह्वल हो उठा। वह वहाँ के लोगों के साथ

किसी भी तरह मिल नहीं पा रहा है।

व्याकुलता से भरा वह खड़ा रहा।

चारो ओर अनगिनत असंख्य मनुष्य नजर आ रहे हैं। लेकिन उसे किसी से भी कुछ पूछने का मौका नहीं मिल रहा है। सभी अपने आप में व्यस्त हैं, कर्मरत जीवन में व्यस्त।

वह चारों ओर विस्मय से घूरता हुआ चला जा रहा था—अचानक उसकी आँखों और चेहरे पर आनन्द की रेखा दौड़ आयी। हाथ में पूजा की थाली लिये हुए जा रही थी एक विधवा नारी। उसे लगा—यह उसके गाँव की ही दादी है। हां, वे ही तो हैं। उसी प्रकार हिलती डुलती चाल, वैसे ही आधा घूंघट। खोया हुआ बच्चा जैसे अपने माँ पा गया है। वह उसके करीब पहुँच कर हाथ जोड़ सामने खड़ा हो गया। नहीं वे भी नहीं है—दादी नहीं है 'किन्तु उन्हीं की तरह हीं हैं। निताई का भ्रम मिट गया। लेकिन उस विधवा ने कहा—'कौन हो तुम ?'

'मैं, मैं मुसीबत का मारा हूँ। बड़े कष्ट में हूं —।'

अभी वह अपना वाक्य पूरा भी नहीं कर सका था कि वह बोलीं —'आओ मेरे साथ चले आओ। नये आये हो तुम ?'

'हां, माता जी' निताई जैसे सब कुछ पा गया।

उसकी यह नयी मां—बड़ी अच्छी हैं। उसने मन ही मन अपने भाग्य को सराहा—भगवान तुम्हरी तरह दयालु और कोई नहीं है। अधम के ऊपर तुम्हारी कृपा की सीमा नहीं। नहीं तो ऐसी यशोदा की तरह माँ मिल सकती थी भला।

वह नयी माँ उसे अपने डेरे पर ले गयी। डेरा—एक कमरा, थोड़ा-सा बरामदा। निताई ने संकोच से कहा—'मैं घर के बाहर ही बैठता हूँ।'

'क्यों, इस बरामदे में बैठो। डोम हो तो क्या हुआ ?

निताई मौन रहा।

माँ बोलती गयी—अपने गांव और घर की बातें। और निताई से भी उन्होंने बहुती-सी बातें पूछ लीं—किस जिले में, किस गांव के तुम रहने वाले हो ? स्टेशन कौन-सा पड़ता है, धान कैसा है ? बरखा कैसी होती है ?

निताई एक एक कर जबाब देता गया। और साथ ही साथ अपने गाँव और घर की स्मृति ताजी होती गयी। वह उदास हो उठा। लेकिन फिर उस विधवा ने एक साथ बहुत से प्रश्न किये—अपने गाँव और देश के खोये हुये सपने से सम्बन्धित प्रश्न। अच्छा केवड़े का वृक्ष है न तुम्हारे गांव में ? जिसके जड़ में साँप कुण्डली मारे बैठा रहता है। और काकातुआ भी होगा ? जो अहर्निश-कृष्ण कहां, कहाँ गया कृष्ण' की रट लगाये रहता है। अचानक उसकी आंखों से एक बूँद आँसू टपक पड़ा। कुछ क्षण तक वह चुपचाप बैठी रही।

निताई को उससे कुछ पूछने का साहस नहीं हुआ। लेकिन 'कृष्ण कहाँ गया रे' इससे उसे समझने में देर नहीं लगी कि बुढ़िया का कृष्ण कन्हैया भी कहीं चला गया है।

विधवा ने कहा—'यशोदा माता अपने गोपाल के लिये रो रही थी और हल्दी पीस रही थी और पिसी हुई हल्दी का उन्होंने बनाया एक पंछी। उस पंछी के सिर पर झर पड़ा—उसकी आंखों से एक बूँद आंसू। उसी के उत्ताप से उसका सर हो गया काला, और उस आँसू में जो रक्त का अंश था वह उसके होंठ पर जा जमा हुआ, तो होंठ हो गये लाल। इसके बाद उन्होंने उस पंछी को उड़ा कर बोली—रे पंछी, जा तू मेरे कृष्ण को ढूँढ़ कर ला। और काकातुआ ढूँढ़ने लगा—कृष्ण कहां ? कहाँ हो कृष्ण ?'

निताई की आँखों में भी पानी भर आया।

माँ ने कहा—'मेरा कृष्ण कहीं खो गया है भइया। दुनिया में मेरा कोई नहीं है। इसी लिये मैं यहाँ आ गयी हूँ। अच्छा तुम्हारे कौन-कौन हैं ? माँ है ?

'हैं, माँ।'

'तब तुम—इस उम्र में ? तुम लोगों की जाति में कोई भी तो इस प्रकार नहीं दीखे ?'

दोनों हाथों को जोड़ कर निताई ने कहा—'यह तो पूर्व जन्म का कर्म फल है—हाँ और नही तो क्या, बाप;दादे खेती करते, हैं' एक क्षण के लिये वह रुका पुनः कहने लगा—'आपसे मैं कुछ नहीं छुपाऊँगा, वे चोरी, डकैती करते हैं।' वह फिर रुका, उसे इसके आगे कहने में शर्म लग रही थी, इसलिये उसने बात बदल दी—आपने कवि-गीत सुना है ? दो कवि कविता में ही एक दूसरे को जीतने को चेष्टा में रत रहते हैं।'

'क्यों नहीं, सुना है। हमारे गाँव के नवान्न के समय कवि गान होता, नील कण्ठ के गीत, वह सब क्या भूलने की बात है।'

यह सुन कर निताई को साहस नहीं हुआ कि वह अपना परिचय कवि के रूप में दे।

लेकिन उस विधवा नारी ने ही पूछा—'तुम क्या कवियों के दल में रहते थे ?'

करबद्ध होकर निताई बोला—'हाँ माता, मैं नीच एक कवि हूँ।'

'तब तो तुम बड़े अच्छे आदमी हो। तीरथ करने निकले हो ?'

क्षण भर चुप रह कर निताई ने कहा—'लौटने की इच्छा से निकला नहीं हूँ। सोचता हूं भगवान के श्री चरणों का बखान सड़कों पर गाता फिरूँगा।'

विधवा बहुत देर तक चुप रह कर बोलीं—तुम्हें सुख नहीं मिलेगा भइया—।' और वह रुक गयी पुनः कुछ सोच कर बोली—'भगवान चाहेगा तो तुम बहुत सुखी होओगे।'

शाम को उसने माँ से विदा ले ली।

माँ का समस्त वृतांत उसने सुन लिया है। मांका दुनियाँ में अपना

कहने वाला कोई नहीं था। अपने एक मात्र पुत्र को खोकर उसने यहाँ तीर्थ स्नान में प्रभु के चरणों की सेवा में अपने को अर्पित कर दिया है। उसके स्वजन, जो लोग उसके ससुर के उत्तराधिकारी हैं, वे उसे बारह रुपये महीने भेजते हैं। सो भी कभी-कभी उसे मिलता है। माँ ने हँस कर कहा—'पेट के लिये लड़ने झगड़ने की इच्छा नहीं होती, शर्म आती है। कम खाने का अभ्यास करना ही उचित है। इसके अलावा उपवास करने पर तो और भी अच्छा है और विधवाओं के लिये तो महीने में १५ दिन उपवास शास्त्र में भी लिखा है।'

निताई ने प्रणाम किया, दूर से ही लेट कर बोला—'आप दो कदम पीछे हट जाइये माता मैं आपके पैरों की धूल लूँगा।'

मां ने कहा—'नहीं, नहीं बेटा, मैंने अभी स्नान नहीं किया है।'

'नहीं,'

इस जिद्द पर माँ ने उसे समझाया—'यहाँ बहुत से छत हैं, तुम्हें स्थान मिल जायेगा। मेरा तो घर तुम देख ही रहे हो, और इसके अलावे इस मकान में और भी दस आदमी रहते हैं। सभी मर्द औरत—'

निताई ने हँस कर कहा—'लेकिन मां देवी-देवताओं का दर्शन बहुत साधना के बाद पल मात्र के लिये ही मिलता है। आप मेरे लिये माँ अन्नपूर्णा हैं।'

मां बोली—'तुम्हारी उम्र कम है, तुम कवि हो अपने घर लौट जाओ। अच्छा गला है, गीत हैं। वहां लोग तुम्हारी कदर करेंगे।'

यह सुन कर निताई जरा खिन्न हो उठा। इसलिये वह वहां से चला आया और विश्वनाथ के मन्दिर के आंगन में आ बैठा। वह डोम है, मन्दिर प्रवेश का उसे अधिकार नहीं है—इसके लिये उसके मन में किसी भी प्रकार का दुःख नहीं है। मन्दिर के एक कोने में ही जरा सी जगह पाकर वह अपने को धन्य मानता है।

चारों ओर आरती और शृंगार के दर्शनार्थियों की भीड़ इकट्ठी है। हजारों कण्ठ से बाबा विश्वनाथ की जय जयकार के साथ उसने अपनी

ध्वनि भी जोड़ दी 'जय विश्वनाथ !'

इसके बाद वह अपने हृदय से गला खोल कर गाने लगा। उसकी मीठी स्वर लहरी से श्रोता धीरे-धीरे इकट्ठे होने लगे। लेकिन कोई भी दो चार क्षण से अधिक यहाँ नहीं ठहरता था।

उसका जब गीत खत्म हुआ तब वहां दो चार व्यक्ति जो सब के अन्त में आकर खड़े हुए थे, खड़े रहे। उनमें से एक कहा—'तुम शायद नये नये कहीं से आये हो ?'

'जी हाँ,'

'और गाओ, गाओ।'

वह गाने लगा—

बाबा विश्वनाथ का देश, काशी विश्वनाथ का देश
मल के भभूत, बदल लेते हैं मन का वेष।
यह बाबा विश्वनाथ का देश।

'वाह, वाह !'

इसके बाद वह वहाँ से बाहर निकल पड़ा और गंगा किनारे चुप चाप जा बैठा। ध्वनि मग्न होकर वह गाने लगा कवि रामप्रसाद का रचा एक गीत—

मां होना है खेल नहीं।
प्रसव किया कुछ दर्द उठाया
और अनेकों कष्ट पाया
लेकिन प्रभु ने प्यार दिखाकर
उसकी ममता को अपनाया !

उसकी आंखें डबडबा आयीं। गीत के साथ ही साथ उसे याद आयी वह विधवा नारी, माँ ! वह उसकी स्मृति में गुनगुनाने लगा।

उसके निकट कई लोग बैठे आपस में भक्ति चर्चा में लीन थे। उनमें से एक ने बिगड़कर कहा—'रे क्या ताना रीरीं लगा रखी है। चुप रहो।'

निताई चुप हो गया।

आषाढ़ की सन्ध्या। यहाँ इन दिनों बड़ी गर्मी पड़ती है।

गंगा के किनारे आदमियों की टोली आती और जाती रहती है। लेकिन जैसे सभी निताई की उपेक्षा कर रहे हों। वह इन्हीं में से एक अपने को मानकर सभी से अलग बैठा रहा। धीरे धीरे जन कोलाहल कम होता गया और रात धरती पर उतर आयी। अपने अन्तस्तल से जब उसका ध्यान भंग हुआ तो उसने देखा चारों ओर अन्धेरा ही अन्धेरा है, अब वह कहाँ जाये? शहर के रास्ते उसके जाने हुए नहीं हैं। इसलिए वहाँ, वहीं गंगा किनारे सो गया और निस्तब्ध रात्रि में गंगा की लहरों की ध्वनि सुनने लगा। अपरिचित, वातावरण उसके हृदय को व्यथित कर रहा है। उसके हृदय में विचित्र विचित्र कल्पनाएँ पैदा हो रही हैं—गंगा की लहरों की ध्वनि में उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि वह भी उनसे जैसे अपरिचित हो! मगर कटुआ नदी के किनारे उसने रातें काटी हैं। वहाँ की लहरें उसके लिये दुर्बोध नहीं थीं।.... इसी प्रकार सोचते हुए उसके मन में यह विचार उठा कि यहां के सर्वस्व तो है बाबा विश्वनाथ, तो क्या वे भी नहीं जानते—नहीं पहचानते आगम जानी होकर भी? तब वह किसे अपना गीत सुनाये? गीत ही तो उसकी भाषा है उसका परिचय है,· क्योंकि वह कवि है। और यहां, यहां औवड़दानी के दरबार में उसके भक्त उसे गीत गाने से मना करते हैं। वह कैसे रहे......?'

अधीर होकर वह सवेरे की प्रतीक्षा करने लगा। उसने बारम्बार यहाँ की अपनी नयी माँ को याद कर कहा—'माता' तुम देवी हो, तुम मुझे सही पथ बताने के लिये यहाँ पहले से आकर उपस्थित थी। मुझे तुम्हारी आज्ञा शिरोधार्य है, शिरोधार्य।

रात रहते ही वह स्टेशन पर जा पहुँचा और प्लेटफार्म पर लगी गाड़ी के एक डब्बे में जा बैठा।

सारी रात जागते रहने के कारण डब्बे में उठंग कर बैठते ही वह नींद में खो गया। लेकिन मोगलसराय में उसकी नींद टूट गयी और उसने गाड़ी बदली और वहाँ भी नींद में गाफिल हो गया। जैसे वह किसी सपने में खोया हो—जैसे वह अपनी माँ के सपने में खोया हो—निश्चित! अपनी माँ की गोद में वह सोया रहा!

दूसरे दिन सवेरे उसकी नींद खुली—किसी परिचित व्यक्ति की पुकार से, जाने कौन उसे प्यार से पुकार रहा था—

'उठो, उठो!'

निताई चौंककर उठ बैठा।

उसे नहीं, नीचे के बेंच पर कोई फैलकर सोया था उसे कुछ नये यात्री उठा रहे थे।

निताई एक लम्बी सांस खींचकर रह गया। डब्बे में भीड़ बढ़ गयी थी। इसलिये वह भी नीचे उतर आया और यात्रियों से बोला—'आप लोग अपना सामान ऊपर रख लीजिये!'

सभी अपनी गठरियों, सन्दूक और पिंजड़े को सम्भाल सहेज कर रखने में व्यस्त हो गये। उनमें से एक बूढ़ी ने निताई को आशीर्वाद देते हुए कहा—'बच के रहो, बेटा।'

निताई ने उसकी ओर भर निगाह देखकर खिड़की से गर्दन निकाल कर अपने पीछे भागते हुए जंगलों और झाड़ियों को देखने लगा। यह सब कुछ परिचित है, उसका देश, अपना देश। गाड़ी रानीगंज पार कर गयी।

बर्दवान में गाड़ी फिर बदली कर दो घन्टे के बाद ही वह अपने गांव अपने घर—अपने लोगों में जा मिलेगा। वहां पहुँचकर वह तारकेश्वर, कालीघाट में अपने गीत सुनायेगा। उसके गांव के लोग उसकी ख्याति से खुश होंगे। उनकी मदद से वह अपना एक दल बनायेगा,

अब उसका नाम और भी ऊँचा हो जायेगा। इतना ऊंचा कि बयाना खूब मिलेगा, निताई के नाम से ही आस पास के गांव के लोग टूट पड़ेंग। लेकिन वह अश्लील और भोंड़े भद्दे गीतों को नहीं गायगा। अपने दल में इसका बिल्कुल निषेध कर देगा। वह गायगा केवल भगवद् भक्ति के गीत, और भी एक आदमी का गुण गीतों में वह गायेगा—वसन्ती के। वसन्ती को क्या वह भूल सकता है? वह वसन्ती का भँवर जो है। वसन्ती के गीत गाये बिना वह नहीं रह सकता। वह कभी भी वसन्ती को नहीं भूल सकता। कभी नहीं।

गाड़ी रुक गयी बर्दवान बर्दवान।

वह कवि दरबार में सबसे पहले चण्डी माता की बन्दना करेगा। वह अभी से ही मां चण्डी के दरबार में गाने के लिये गीतों की रचना करने लगा। अपने गांव की जमीन पर पैर रखते ही वह चण्डी माता के स्थान पर जायेगा और गायेगा :—

ओ माता, माता दो सहारा
लौटा तेरा प्यारा
घर से भागा लड़का लौटा, घूम घूम कर देश न्यारा
ओ माता, माता दो सहारा

दिगन्त पर जहां तक उसकी दृष्टि जा रही है, वहां तक काले मेघों के टुकड़े जमे हैं। हू हू कर भीगी हवा बह रही है। ओ: तन जुड़ा रही है। धरती की मिट्टी अब नजर नहीं आती, हरी हरी घासों से धरती ढक गयी है। अरे—वर्षा होने लगी। खेत की मिटटी वर्षा से काली हो गई है। वह आदरणीय बेटी की तरह छूने से ही गिर पड़ रही है। भागते हुए टेलीग्राम के यहां से वहाँ तक फैले तारों पर भीगे पंख के कारण एक कौवा बैठा कांव कांव कर रहा है। रेलवे लाइन के दोनों तरफ जंगली लाल फूलों की छटा अवर्णीय है और, ओहो, केवड़े की झाड़ी से छनकर आने वाली हवा ने उसे अतीत की ओर मोड़ दिया। उसे याद आया वह गीत जिसे उसने ठाकुर जी की याद में

लिखा था। वही गीत, जिसके भाव हैं—हे केवड़े के फूल, तुम कितने अच्छे हो, तुम्हारी सुगन्ध से तन और मन पुलकित हो उठता है मगर तुम कांटों से घिरे हो।

झम झम करती हुई रेल चली जा रही है। प्रकृति के आंगन में वर्षा भी झम झम नृत्य कर रही है और सन्ध्या के आंचल का साया पाकर मेघ के टुकड़े और भी कजरारे हो गये हैं। वर्षा जोरों से हो रही है और······उधर भयंकर बर्षा हो चुकी है। मैदान की गढ़हियों में जमें वर्षा के जल सिहर रहे हैं। मेंढ़क की टर्र टर्र ध्वनि भी आ रही है।

और गाड़ी चली जा रही है—झम झम झम। छोटी नदी का पुल पार हो गया। गेरुए रंग के पानी की धार में सफेद फेन बहता आ रहा है। दोनों ओर काश फूल की झाड़ियां, हरी हरी! अजय, अजय नदी। अब गांव करीब है। वह अपनी मां के, अपने लोगों के बहुत करीब!

अब बोलपुर, इसके बाद कोपाई स्टेशन और इसके भी बाद जंकशन, छोटी लाइन। छक छक छक, फक फक फक, झूले की तरह हिलती हुई छोटी लाइन की गाड़ी चलती है। साथ ही साथ उसका मन भी नाच रहा है—माँ, मेरी मां, मां!

वह क्या है—'नीपचे पोखर' 'उदासी मैदान' और वह काली का बगीचा, जिस बगीचे के वृक्ष थे उसके गीतों के श्रोता।

गाड़ी जरा मुड़ी, स्टेशन में प्रवेश कर रही है। यह, अब गाड़ी रुकी।

गाड़ी चली गयी।

निताई खड़ा है। उसके चारों ओर विस्मय से भरी जनता है। निताई को यह आशा नहीं थी। इतना स्नेह, इतना आदर उसके लिये उसके लिए यहां संचित हो चुका है? राजा भी मौन है। बनिया मामा, देवेन, किस्टो, रामलाल कई लोग उसे घेरे खड़े हैं। और सामने वह

कदम्ब का वृक्ष ! फूलों का समय खत्म हो आया है। सभी वृक्ष-हरे-हरे पत्तों से गदराये हैं। फिर भी दो चार फूल जैसे निताई के लिये ही फूटे हैं। निताई की आंखें भरी हैं। निताई रो रहा है, रो रहा है विप्रपद ठाकुर की मौत का समाचार सुनकर। विप्रपद ठाकुर मर गया है।

विप्रपद के लिये उसे रोते देखकर सभी को आश्चर्य हो रहा है, या है भी मजेदार बात। लेकिन निताई के इस नीरव विगलित अश्रुधार ने एक ऐसा उच्छवासित वातावरण उत्पन्न कर दिया है कि उाका मजाक उड़ाया नहीं जा सकता। निताई की कविता की प्रशंसा यां तक उसके पहुँचने से पहले पहुँच चुकी है। उसके लिये श्रद्धा हो चहे न हो, मगर प्रशंसा सभी मन ही मन करते है। लेकिन यह वह नो है, इससे भी अतिरिक्त है वह कुछ। अपनी अश्रुधारा की महिमा स्सभी से अधिक महिमावान्वित हो उठा है। विप्रपद को खोकर वह सा ही रहा—इतनों को वापस पाकर भी।

बहुत देर बाद।

निताई आ बैठा, उसी कदम्ब की छाँव में। राजा को पुकार कर उने अपने पास बैठाया। रेल की दोनों पटरियाँ जहाँ जाकर एक दु में बदल गयी हैं, वहीं दृष्टि गड़ाकर निताई ने कहा—'राजन, ई !'

'उस्ताद, बोलो भइया !'

'ठाकुर जी ?'

'उस्ताद।'

'राजन !'

'ठाकुर जी, ठाकुर जी मर गई भाई।' राजा के होंठ कांपने लगे 'ली हो गयी थी ठाकुर जी'—इसके बाद राजा की आंखों से पानी ने लगा। 'पगली होकर ठाकुर जी मरी !'

यह बात जितनी बड़ी थी राजन उसे उतने ही थोड़े में कह सका। कन इन्हीं कई शब्दों के समय के बीच निताई ने जाने कितना क्या

सोच लिया, बहुत सी बातें।

राजा ने कहा—'तुम, तुम क्यों रोते हो उस्ताद उसके लिये ?'

एक गहरी साँस खींचकर निताई ने कहा—'सुनो, एक गीत सुन राजन !'

और वह गुनगुनाकर गाने लगा :—

यह व्यथा मेरे मन में,

प्रीत की मिटी नहीं साध, बन गया अवसाद !

राजा ने उसके हाथों को कस कर अपने हाथ में ले लिया और बोला—'ओह, बोलो, बोलो उस्ताद ऐसा क्यों होता है ?'—फिर उस की आँखें भर आईं। फिर रोया। निताई की आँखों से फिर अश्रु धार बह चली।

रोते ही रोते वह हँसने लगा। नहीं ठाकुर जी मरी नहीं। व साफ देख रहा है—वहाँ जहाँ रेल की दो समानान्तर झकमक करती हुई पटरियाँ एक में मिलकर एक बिंदु में परिणित हो गई हैं, वहीं भ पर सोने का मुकुट रखे एक काश फूल झूम रहा है, वह उसकी ओर बढ़ता आ रहा है जैसे। वह मरी नहीं है, नहीं मरी है। यहाँ के र जर्रे में वह है। इस कदम्ब के वृक्ष, कदम्ब के फूल, यहां की मिट्टी व रेल की पटरियां सभी में वह इतनी घुली मिली है जैसे वे सब ठाकुर जी ही हैं। और उन सबों में है ठाकुर जी।

'निताई उठ खड़ा हुआ।' बोला, 'चलो।'

'कहां भाई ?'

'चण्डी स्थान ! चलो माता को प्रणाम कर आऊँ।'

राजा की ओर देखकर उसने कहा—'दण्डवत करूँगा माता को।'

उसका अंग अंग उस धूल के स्पर्श के लिये लालायित हो उठा है।